पाकिस्तान का प्रतिरोधी उर्दू साहित्य

□ डॉ० फ़ज़ले इमाम

श्री आर्ट प्रिन्टर्स, राजा पार्क, जयपुर से मुद्रित करवाकर दी यूनिवर्सल बुक
राजा पार्क, जयपुर द्वारा प्रकाशित।

दो शब्द

प्रत्येक साहित्य समाज और उससे सम्बन्धित समस्त प्रत्यय एवं प्रतिमानों को प्रस्तुत करता है। अच्छा और उत्तम साहित्य वही होता है जो मानव-जीवन का नेतृत्व करे, समाज के बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब को कुशलता से कलात्मक स्वरूप दे।

साहित्यों का इतिहास साक्षी है कि उर्दू भाषा एवं साहित्य ने सदैव अपनी सजीवता को बनाये रखा है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उर्दू साहित्य बड़ी दिलेरी और निडरपन से मानवता को उबारने के लिए प्रयत्नशील रहा है। इसने जिन्दगी की पेशानी की हर सिलवटों को बड़ी सक्षमता से अपने दामन में उतारा है।

अत्याचारों, अन्यायों तथा विषम परिस्थितियों से जूझने का इसे सलीका आता है। हिन्दोस्तान की जंगे आज़ादी खुद गवाही देगी कि उर्दू के साहित्यकारों, शायरों और पत्रकारों ने अंग्रेज़ी क्रूर शासन के विरुद्ध अपने कलम को तलवार बना लिया था। इनके कलम की नोंक भाले की चुभन रखती थी। उर्दू के प्रगतिशील लेखन का इतिहास आज भी जीवित है और उसका साहित्य आज भी शांति, न्याय और प्रेम का सबक दे रहा है।

अब इस बात को स्वीकार करने में किसी को भी इन्कार नहीं हो सकता कि भारतवर्ष का विभाजन इतिहास की एक बड़ी भूल थी—जो राजनीतिज्ञों का ही कार्यकलाप कहलाएगा। पाकिस्तान का निर्माण और फिर वहाँ पर उत्पन्न होने वाली स्थिति बड़ी हृदय विदारक और भयानक रही है, और है।

वर्षों से सैनिक शासन के नतीजे में ज़िन्दगियाँ सिकुड़ गयी हैं, मानवता अपंग और गूंगी-बहरी बन गयी है। लेकिन आज भी वहाँ इस संगीन दौर में भी ऐसे जियाले साहित्यकार और शायर हैं जो खूने दिल में उंगलियों को डुबो कर साहित्य सृजन में लगे हुए हैं। यह छोटी सी पुस्तक उन्हीं रचनाओं की दस्तावेज़ है। पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र ने दी, जहाँ मैंने इसी विषय पर व्याख्यान दिया था।

अनुक्रमणिका



1

ग़ज़ल

देश का विभाजन और पाकिस्तान का स्थापन इतिहास की एक बहुत बड़ी भूल थी। कौनसी ऐसी ही परिस्थितियाँ थीं जिनमें यह दुर्भाग्यपूर्ण बंटवारा हुआ इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है किन्तु इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि यह राजनीति ही है जिसने मानव जगत को भूगोल तथा इतिहास की परिधियों में बांट रखा है। किन्तु साहित्य इन सीमाओं से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है और ऐसी स्वस्थ राजनीति को जन्म देता है जिसमें वियोग नहीं संयोग की मादकता महकती है, फूलती और फलती है।

मुस्लिम लीग ने 23 मार्च, 1940 को लाहौर में दो राष्ट्र के सिद्धान्त की बात को स्पष्ट शब्दों में दोहराया था जिसे पाकिस्तान के राष्ट्रपिता मोहम्मद अली जिन्नाह ने निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया था—

"हिन्दू और मुसलमान हर बात में एक दूसरे से भिन्न हैं। हमारा धर्म, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारी भाषा, हमारी स्थापत्य कला, हमारा संगीत, न्याय शास्त्र और कानून, हमारा खान-पान, समाज, वेश-भूषा भिन्न है—हम हर बात में भिन्न है।" [1]

लाहौर प्रस्ताव में यह पारित किया गया—

"मुसलमानों की कोई भी संवैधानिक योजना तब तक स्वीकार नहीं होगी जब तक वह निम्नांकित सिद्धान्तों पर नहीं बनाई जाती। वे सिद्धान्त [illegible] भौगोलिक दृष्टि से संस्पर्शी (Geographically Contiguous) [illegible] सीमांकन प्रदेशों में राज्य-क्षेत्रीय समायोजनों के साथ, जो आवश्यक हों, [illegible]

1. मोहम्मद अली जिन्नाह, स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, भाग 2, पृ० [illegible] हिन्दी अनुवाद—राज्य शास्त्र समीक्षा, 1983, [illegible] पृ० 50।

दिया जाये जिससे कि वे क्षेत्र जिनमें संख्या की दृष्टि से मुसलमान बहुमत में हों, मिलाए जाकर स्वतन्त्र राज्यों का गठन किया जाये।"[1]

उपरोक्त प्रस्तावों से तो यही परिलक्षित होता है कि दो राष्ट्र के सिद्धान्त ने ही देश का विभाजन किया। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। बहुत अधिक संख्या में मुसलमान पाकिस्तान नहीं गए। वे भारतीय राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत थे। इन मुसलमानों ने पाकिस्तान न जाकर दो राष्ट्र के सिद्धान्त को अत्यन्त रोचक ढंग से तोड़ दिया। सम्प्रति भारत में हिन्दू तथा मुसलमान एक साथ रहते, मिलते जुलते हैं।

स्मरण रहे कि दो राष्ट्र के सिद्धान्त की बात देखने में जितनी उचित लगती है, सोचने, समझने और परखने में उतनी ही अनुचित। सामने का प्रमाण यह दिया जा सकता है कि यदि राष्ट्र धर्म के आधार पर बनते तो पाकिस्तान से बंगला देश क्यों कर कट कर पृथक् राष्ट्र बन जाता। तर्क संगत और विवेक सम्मत यही है कि दो राष्ट्र के सिद्धान्त का नारा और इस्लाम की दुहाई मोहम्मद अली जिन्नाह ने केवल निजी स्वार्थ और राजनीतिक दृष्टिकोण से लगायी थी। इस नारे का उद्देश्य यह था कि वह धार्मिक जोश को अपनी राजनीति के लिए प्रयोग कर सके। जो धर्म के साथ घोर अपराध और अनैतिकता थी। पाकिस्तान वास्तव में मुस्लिम बाहुल्य वाले प्रान्तों के पृथक् रूप से समायोजन का प्रयत्न था। इसलिए ब्रिटिश भारत की कुछ देशी रियासतें जो मुसलमान बाहुल्य थीं, पृथक् केन्द्र में विश्वास रखती थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पाकिस्तान रियासतों की क्षेत्रीय स्वतन्त्रता और स्वामित्व के आधार पर स्थापित हुआ था, यद्यपि इसकी स्थापना के लिए धर्म का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग किया गया था।

पाकिस्तान में क्षेत्रीय तथा आन्तरिक स्वतन्त्रता का संघर्ष आज भी जारी है। परिणामस्वरूप बंगला देश, पाकिस्तान से पृथक् होकर एक नया राष्ट्र बन गया। पख्तूनिस्तान समस्या मुँह फैलाए खड़ी है। बिलोचिस्तान की स्वतन्त्रता भी दस्तक दे रही है। सिन्ध में लोकतंत्र को जीवित करने की मुहिम जारी है। 'जय सिन्ध' भी जय जयकार कर रहा है।

साहित्य सामाजिक-राजनैतिक सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम है अतः पाकिस्तान के प्रतिरोधी उर्दू साहित्य में इसकी झलकियाँ बड़ी सरलता से दिखाई देती हैं। गत 37 वर्षों से पाकिस्तान से भारत में पुस्तकों का आना-जाना स्वच्छन्द रूप से नहीं हो पा रहा है। सीमा के उस पार जो कुछ लिखा जा रहा है उसका कुछ ही अंश हम तक पहुँच पाता है।

---

1. सईद शरीफुद्दीन पीरज़ादा—डवेल्पमेन्ट ऑफ पाकिस्तान, पृ० 296–98। हिन्दी-अनुवाद, राज्य शास्त्र समीक्षा, डॉ० पी०एल० भोला, पृ० 30।

आरम्भ मे ही यह बात लिख देना आवश्यक है कि पाकिस्तानी शासक प्रथम दिन से आज तक अपने देश को स्वस्थता, विमलता, उज्जवलता, निर्मलता तथा प्रगतिशीलता से बर्बतापूर्ण ढग से वंचित रखने का भरसक प्रयास करते रहे हैं। इसके बावजूद वहा अत्याचार, नृशसता तथा क्रूर असहिष्णुता के प्रति गहरा असन्तोष रहा है जिसे वहा के शायर और साहित्यकार साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं। विशेषकर उर्दू शायरी की प्रमुख विधा 'गजल' मे प्रतिरोध की लय बडी तीखी और स्पष्ट सुनाई देती है। यह स्थिति दो प्रकार की है। एक तो वह शायर है जो भारतवर्ष से हिजरत करके गए है, उनकी गजलों में अपना बचपन, गाव, कस्बे और शहर का वह माहौल और उसकी परछाइया है जिसे वह छोड कर गए थे, और दूसरा रूप वह है जो वहीं के है और मुहाजिर शायरों (शरणार्थियों) से विभिन्न परिस्थितियों मे है। गजल मे इसका आरम्भ फैज अहमद फैज, अहमद नदीम कासिमी, जहीर काश्मीरी, से होता हुआ हबीब जालिब और अहमद फराज तक पहुँचता है। इन शायरों के यहा विरोध की ध्वनि दहकते हुए अंगारों की भांति है, कुछ के यहां जरा मध्यम चिनगारी की तरह है। कुछ अशआर प्रस्तुत हैं—

हमारे घर की दीवारों पे नासिर, उदासी बाल खोले सो रही है।

कुछ यादगारें शहरे सितमगर ही ले चलें,
आए है इस गली में तो पत्थर ही ले चलें।

यूं किस तरह कटेगा कडी धूप का सफर,
सर पर ख्याले यार की चादर ही ले चलें।

इस शहरे बे चिराग मे जाएगी तू कहां,
आए शबे फिराक[1] तुझे घर ही ले चलें।

—नासिर काजमी

इस शहर के लोग बड़े ही सखी, बडा मान करें दुर्वेशों[2] का,
पर तुम से तो इतने बरहम है क्या इनसे माग लिया तुमने।
सच, अच्छा पर सब के लिए कोई और मरे तो और अच्छा,
तुम कोई मन्सूर हो जो सूली पे चढो, खामोश रहे।
मगर दोस्तो, दोस्तो, दोस्तो! हम जहा से चले थे अभी तक वहीं है
वह आदर्श के महल तो ढा चुके, उनके खडरात नें गोन बन के मकी है।

—इब्ने इन्शा

1. वियोग की रात
2. फकीर

हम किसके हाथ पे अपने लहू को पहचाने,
तमाम शहर ने पहने हुए हैं दस्ताने।
इक मौजे खून मल्क़ थी किसकी जबीं पे थी,
इक तौके फर्दे जुर्म था किसके गले में था।
—मुस्तफा ज़ैदी

आज हम दार पे खींचे गए जिन बातों पर,
क्या अजब कल वह जमाने की किताबों में मिले।
फराज अपना मुकद्दर संगसारी,
हमी इस अहद् के आईना गर हैं।
इस मौसम में गुलदानों की रस्म कहा,
लोगों अब फूलों को आतिश दान में रखना।
अब के हम पर कैसा साल पड़ा लोगों,
शहर में आवाजों का काल पड़ा लोगों।
कातिल इस शहर का अब बाँट रहा था मनसब,
एक दर्वेश भी देखा इसी दरबार के बीच।
बज्मे मक्तल जा सजे कल तो यह इमकान भी है,
हम से बिस्मिल तो रहें, आप सा क़ातिल न रहे।
कोई मौसम करीने का न आया,
हवाओं का सफर नामोतबर हैं।
कल तारीख यकीनन खुद को दुहरायेगी,
आज के इक इक मन्जर को पहचान में रखना।
पेच रखते हो बहुत साहबो दस्तार के बीच,
हम ने सर गिरते हुए देखे हैं बाजार के बीच।
—अहमद फराज

सजा कुबूल मगर इतना सोच लो कि यहां,
जो तुम से पहले थे व अख्तियार वह भी थे।
—जहूर नज़

बुरा लगा मेरे साकी को जिक्रे तशना लबी,
कि यह सवाल मेरी बज्म में कहा से उठा।
—सलीम अहमद

जलेगा अब न चिरागे सितम, कहो कि नही,
कहेंगे हम न जफ़ा को करम, कहो कि नही।

दबाव दहर का मुश्किल है टालना हक्की,
तुम अपने आप ही से कम से कम, कहो कि नहीं।

—शानुल हक़ हक्की

गजल के इन अशआर में एक लपक, धीमी-धीमी आंच, उत्पीड़न, दर्द और फांस की सी कसक है। वहा की सामाजिक स्थिति, सेना के प्रशासकों का प्रकोप, जीवन, कला तथा साहित्य पर अत्याचार कर रहा है। पूरा समाज एक प्रकार से कीटनाशक औषधि की मण्डी बन गया है। उर्दू गजल के शायरों ने अपनी कला मे वहा की हालत को बडी सुन्दरता से आईना दिखलाया है। पाकिस्तान में बेगुनाहो पर जिस प्रकार से अत्याचार ढाए जा रहे है और जिस रूप से वहा पर लोकतन्त्र का गला घोंट दिया गया है उस घुटन और उमस का अन्दाजा उपरोक्त उद्धरणों से होता है। वहां का वर्तमान प्रशासक और प्रशासन निम्न स्थिति में है—

एक चील एक गिमटी पे बैठी है धूप मे,
बस्ती उजड गयी है, मगर पासवा तो है।

—मुनीर नियाज़ी

अर्थात् वहा का सैनिक शासक चील की भांति गिमटी पर धूप में बैठा हुआ है जैसे कि किसी उजडी और वीरान बस्ती में केवल चील ही पासबानी (रखवाली) करती है।

पाकिस्तान मे, विशेषकर कराची, लाहौर, हैदराबाद में, प्रत्येक बीस घर पर एक घर खाडी के मुल्कों मे काम करता है। उनके काम का स्तर एक तरह का नही है फिर भी वहा की आय का एक बडा भाग वह अपने परिजनो को भेजते है जिससे कृत्रिम समृद्धता तो प्रतीत होती है, लेकिन उनकी अपनी धरती मे कुछ नही है। इसीलिए भविष्य का ध्यान नही इस बात को वहां के शायर ने इस रूप मे प्रस्तुत किया है—

हाल के गुम्बद मे गुम है फिक्रे आइन्दा नहीं,
दिल तो सीने में धडकते है मगर जिन्दा नही।

अर्थात् वर्तमान के गुम्बद (Tomb) मे खोये हुए हैं, भविष्य की कोई चिन्ता नही। यहां के निवासियों के दिल मे धड़कन तो है मगर जिन्दगी के आसार नही पाये जाते। पददलित और टूटे हुए है। यह एक प्रकार का खामोश आक्रोश है।

पाकिस्तान के प्रतिरोधी उर्दू गजल की एक सबसे सशक्त आवाज 'हबीब जालिब' की है। पाकिस्तान में एक के बाद एक शासक आते जाते रहे लेकिन 'हबीब जालिब' बिल्कुल निडर और बेबाक रहे। किसी सत्ता की खोज में नही भागे। वह कहते हैं—

दिल की बात लबों पर लाकर अब तक हम दुख सहते है,
हमने सुना था इस बस्ती मे दिलवाले भी रहते हैं।
अकड़ अकड के न चल इस जमी पे लाल मे रह,
तेरा हिसाब न होगा, न इस ख्याल में रह।
न गुफ्तगू से, न यह शायरी से जायेगा,
असा[1] उठाओ कि फिरऔन[2] इसी से जायेगा।
फिरगी का जो मै दरबान होता,
तो जीना किस कदर आसान होता,
मेरे बच्चे भी अमरीका मे पढ़ते,
मैं हर गर्मी में इगलिस्तान होता,
जमीनें मेरी हर सूबे में होती,
मैं वल्लाह सदरे पाकिस्तान होता।

इन अशआर में हबीब जालिब ने प्रत्यक्ष कटाक्ष किया है कि पाकिस्तान राष्ट्रपति किस प्रकार से फिरगियों (अग्रेजो) के दरबान बने हुए है। पाकिस्तान हर सूबे में उनकी और उनके सम्बन्धियो की चल एव अचल सम्पत्ति है। उनके बच अमरीकी शिक्षण मे रहकर अमरीका में शिक्षित एव दीक्षित हो रहे है। यदि मैं भ इस प्रकार का हो जाता तो अपनी जिन्दगी बड़ी आसानी से गुजरती।

'हबीब जालिब' वर्तमान शासक को चेतावनी देते है कि तुम से पहले ज भी यहा शासन में शक्तिवान थे, उनको अपने आपके खुदा होने का उतना ही विश्वा था जितना तुम्हे है। किन्तु कोई भी समय और जन-शक्ति के सम्मुख नही ठह सका है—

तुम से पहले वह जो इक शख्स यहा तख्त नशीन था,
उसको भी अपने खुदा होने पे इतना ही यकीन था।
कोई ठहरा हो जो लोगो के मुकाबिल तो बताओ,
वह कहां है कि जिन्हे नाज बहुत अपने तई था।
कोई कफन अब ले कर निकले अपने गरेबा का जालिब,
चारो जानिब सन्नाटा है दीवाने याद आते है।

प्रायः पाकिस्तानी शासकों द्वारा वहा की जनता को यह कह कर भयभीत किया जाता रहा है कि पाकिस्तान को खतरा है। निकटवर्ती देश भारत का नाम लेकर वहा के लोगो को युद्ध के डर से अनुशासित करने का असफल प्रयत्न किया

---

1. लकडी
2. एक क्रूर बादशाह जिसने खुदाई का दावा किया था।

जाता रहा है। इस अवस्था में हबीब जालिब की शायरी का शंखनाद बज उठता है—वह कहते है कि वतन (पाकिस्तान) को खतरा नही है। खतरा पूंजीवाद की व्यवस्था को है और जो रहज़न (डाकू प्रशासक) है उसी का शासन खतरे में है। जो मुल्ला साम्प्रदायिकता की आग को भड़काते हैं उन्ही शैतान मुल्लाओं का लशकर खतरे मे है। इस गजल के कुछ अशआर प्रस्तुत है—

वतन को कुछ नही ख़तरा निज़ामेजर[1] है ख़तरे मे
हक़ीक़त मे जो रहज़न[2] है, वही रहबर है ख़तरे में।
जो भड़काते है फ़िर्क़ा[3] वारियत की आग को पैहम[4],
उन्ही शैतां सिफ़त मुल्लाओं का लशकर है ख़तरे मे।
अगर तशवीश[5] लाहक़ है तो सुल्तानो को लाहक़ है,
न तेरा घर है ख़तरे में, न मेरा घर है ख़तरे में।

हबीब जालिब एक निर्भीक कलाकार की भाँति कहते है कि हम एक जर्रा ही सही मगर पहाड़ से टकराने का साहस रखते है और जान हथेली पे लेकर आ गए है—

ज़र्रे ही सही कोह[6] से टकरा तो गए है,
दिल ले के सरे अर्से-ए-गम[7] आ तो गए है।

पाकिस्तान मे किस प्रकार जनता का विश्वास न्याय पालिकाओं पर से उठ गया है इसका उदाहरण स्वयं हबीब जालिब ने आप बीती के स्वरूप अपनी एक ग़ज़ल में दिया है। वह जेल की सलाखो में बन्द है और उन पर मुकद्दमा चल रहा है। जिस दिन निर्णय सुनाया जाने वाला है—हबीब जालिब उसके पूर्व ही न्यायाधीशों को देख कर कह उठते है कि यह तो स्वयं कैदी है ये हमें क्या न्याय देंगे ? इनके चेहरों पर लिखा हुआ है कि ये हमको क्या सजा देने वाले है—

ये मुन्सिफ़ भी तो कैदी हैं, हमें इन्साफ़ क्या देंगे ?
लिखा है इनके चेहरे पर हमें ये फ़ैसला देंगे।

मार्शल लॉ का अत्याचार, अँधेरा, उमस, घुटन और सन्नाटा है, कुछ वे जो शासकों की चौकडी (Caucus) मे है, वे बहुत सन्तोष से अपनी आत्मा की आवाज दबा कर और बेच कर बैठे हुए है। शायर कहता है कि—

एक हुक्मरां के हाथ ज़मीर[8] अपना बेच कर
बैठे हुए है देखिए क्या बन के मौतबर।

---

1. पूंजीवाद
2. लुटेरा
3. साम्प्रदायिकता
4. बार बार
5. संशय
6. पहाड़
7. ग़म की सूली
8. आत्मा

पाकिस्तान का शासक वर्ग अमेरिकी साम्राज्य का ऐजेन्ट है और फिलस्तीन लेबनान, इसराईल की समस्याओं पर मुजरिमाना खामोशी अपनाए हुए है। लेकिन पाकिस्तान की जनता अमेरिकी साम्राज्य के विरोध में है और फिलस्तीन, लेबनान, और सूडान के मासूम बेगुनाहों तथा मजलूमों के साथ है।

पाकिस्तान में इस्लाम को किसी प्रकार का खतरा नहीं है। हबीब जालिब कहते है कि पाकिस्तानी शासकों और सैनिकों को लेबनान, फिलस्तीन तथा सूडान जाना चाहिए, जोलान की पहाड़ियों में इसराइलका मुकाबिला करने कोजाना चाहिए। जहां इस्लाम वास्तव में खतरे में है। हमारी जान के पीछे क्यों पड़े हुए है।

जब वहां के शायर और साहित्यकार बेरुत जाने की आज्ञा मांगते है तो उन्हे कैदखाने में बन्द कर दिया जाता है। इस स्थिति को जालिब के अशआर में देखिए और सुनिए--

जहां खतरे में है इस्लाम उस मैदान में जाओ,
हमारी जान के दरपे[1] हो क्यों लेबनान में जाओ।
हमी पर ज़ोर चलता है, हमी को मार डाला है,
तकाजा है यह गैरत का ज़रा सूडान में जाओ,
इजाजत मांगते हैं हम भी जब बेरुत जाने की,
तो अहले हुक्म फ़रमाते है तुम ज़िन्दान[2] में जाओ।

हबीब जालिब की एक सिचुएशनल गज़ल के तीन शैर प्रस्तुत हैं जिसमें दृश्य है कि वह जेल में है। उनकी पत्नी, बच्चे मिलने आए है, किन्तु वहां पर गुप्तचर विभाग का पहरा है। वह अपनी पत्नी से भी बात नहीं कर सकते। बच्चों को प्यार नहीं कर सकते। उसके घर पर भी गुप्तचर विभाग की चौकसी रहती थी। और अब जेल में भी यही दशा है। इस उद्गार को वह अपनी गज़ल में बड़े दर्दनाक ढ़ग से ढ़ालते है। केवल तीन अशआर पढ़िए—

जो हो न सकी बात वह चेहरों से अयाँ[3] थी,
हालात का मातम था मुलाक़ात कहां थी।
उसने न ठहरने दिया पहरों मेरे दिल को,
जो तेरी निगाहों में शिकायत मेरी जा थी।
घर में ही कहां चैन से सोये थे, कभी हम,
जो रात है ज़िन्दां[4] में वही रात वहां थी।

---

1. पीछे पड़ना 2. कारागार
3. स्पष्ट 4. कारागार

अब चन्द ग़ज़ल के और अशआर उन शायरों के भी पढ़ते चलिए जिन्होंने पाकिस्तान की उर्दू ग़ज़ल को विरोध तथा आक्रोश का प्रतीक बनाया है—

बेचैन बहुत फिरना, घबराए हुए रहना;
इक आग सी जज्बों की दहकाए हुए रहना।

—मुनीर नियाज़ी

बर्फ़ जैसी साख़्तें जज्बात के अतराफ़ क्यों,
ज़िन्दगी के नाम पर शोला बजा ज़िन्दा रहो।

—अतहर नफ़ीस

लोग थर्रा गए जिस वक्त मुनादी आई,
आज पैग़ाम नया ज़िल्ले इलाही देंगे।
साहिल पे जितने आब गज़ीदा थे सब के सब,
दरिया का रुख़ बदलते ही तैराक हो गए।
पा ब गिल सब है, रिहाई की करे तदबीर कौन,
दस्त बस्ता शहर में खोले मेरी जन्जीर कौन
सब जहां पा बस्ता,[1] मुलजिम के कटहरे में मिले,
उस अदालत में सुनेगा, अक्ल की तफसीर[2] कौन।
मेरा सर हाज़िर है, लेकिन मेरा मुन्सिफ़ देख ले,
कर रहा है मेरी फर्दे जुर्म[3] को तहरीर कौन।
अमीरे शहर से साइल[4] बड़ा है।
बहुत नादार है लेकिन दिल बड़ा है।
लहू जमने से पहले खूं बहा[5] दे,
यहां इन्साफ़ से क़ातिल बड़ा है।
किसी बस्ती में होगी सच की हुरमत[6],
हमारे शहर में बातिल[7] बड़ा है।
जो ज़िल[8] अल्लाह पर ईमान लाए,
वही दानाओं[9] में आक़िल बड़ा है।
अपने क़ातिल की जहानत से परेशान हूं मैं,
रोज इक मौत नए तर्ज़ की ईजाद करे।

—पर्वीन शाकिर

---

1. बंधे पांव	2. व्याख्या	3. जुर्म की सूची
4. सवाल करने वाला	5. खून का बदला	6. सम्मान
7. झूठ	8. शासक	9. ज्ञानी

यह है अत्यन्त संक्षिप्त एक सर्वेक्षण पाकिस्तान की प्रतिरोधी उर्दू ग़ज़ल का जिसमें वहां के ग़ज़ल के शायरों की छटपटाहट तथा बेकरारी देखी जा सकती है। इन शायरों ने ग़ज़ल की कला में बड़े सलीके से बातें कह दी है। ग़ज़ल में बातें विस्तार से नहीं कही जा सकती है क्योंकि यह सारांश की कला है। प्रतीकात्मक भाषा, स्पष्ट अन्दाज़े बयान, मुहावरों की छटा, अलंकारों के प्रयत्न एवं प्रतिमान से ग़ज़ल का स्वरूप बनता, सवरता और निखरता है। इन ग़ज़लों में अन्याय, असमानता, परतन्त्रता के प्रति गहरा क्रोध है। एक प्रकार का खामोश ज्वालामुखी परवरिश पा रहा है जो किसी दिन भी फूट सकता है। वहां पर निरंतर सैनिक शासन, अस्थिरता तथा उथल-पुथल से साधारण जीवन असामान्य हो गया है। व्यवस्था की असक्षमता, अमरीकी साम्राज्य का दिन प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रभुत्व वहां के जीवन को अस्थिर बनाए हुए है। जैसा कि इकबाल साजिद कहते है—

जहा भीवारा बुनियादें फ़सील को दर में रहते है,
हमारा हौसला देखो, हम ऐसे घर में रहते है।

वहा की जनता का सैनिक शासन को झेलते रहना भी मुजफ्फ़र वारिसी की निगाह में जुर्म है क्योंकि ज़ुल्म को सहते रहना भी ज़ालिम के अत्याचार की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता है—

मूलियो से भी तो पैमाइशे कद होती है,
ज़ुल्म सहने से भी ज़ालिम की मदद होती है।



2

नज्म

उर्दू नज़्म को पाकिस्तान मे बहुत तरक्की हासिल हुई। यह क्षेत्र नज्मों के लिए पहले भी उचित था क्योंकि इसी धरती पर 1874 ई० मे मौलाना मोहम्मद हुसैन 'ग्राजाद' ने विधिवत नज्म निगारी की बुनियाद पंजाब के ग्रन्जुमन के मुशायरो द्वारा डाली थी जिसका सिलसिला डा० इकबाल, नून० मीम० राशिद और फैज ग्रहमद 'फैज' से होता हुआ, फहमीदा रियाज तक पहुचता है।

फैज ग्रहमद 'फैज' की नज्मों मे बेचारी ग्रौर बेक़रारी की लय है। वह ग्राजादी के दिलदादा है ग्रौर खुली हुई फिजा मे जीना चाहते हैं। उनकी एक नज्म 'सिपाही का मरसिया' के कुछ हिस्से पेश है—

उठ्ठो ग्रब माटी से उठ्ठो,
जागो मेरे लाल,
ग्रब जागो मेरे लाल,
घर घर बिखरा भोर का कुन्दन,
घोर-ग्रधेरा रहता ग्रांगन,
जाने कब से राह तके है,
बाली दुल्हनिया, बांके बीरन,
सूना तुम्हारा राज पड़ा है,
देखो कितना काज पड़ा है,
बैरी, बिराजे राज सिंघासन,
तुम माटी मे लाल,
उठ्ठो ग्रब माटी से उठ्ठो,
जागो मेरे लाल,
हट न करो, माटी से उठ्ठो,
जागो मेरे लाल,
ग्रब जागो मेरे लाल

इन नज्म में एक संजीदा आक्रोश निहित है जिसमें जनता को समझा गया है कि ऐ, मिट्टी के लाल, उठो ! और अपने जीने का अधिकार प्राप्त कर जनता का राज्य और जन साधारण की ही हुकूमत हो।

'मजीद अमजद' पाकिस्तान का बहुत अच्छा नज्म का शायर है। उ यहां आधुनिक नागरीकरण से उत्पन्न होने वाले संकट की आवाज खुल कर सुन देती है। किस प्रकार से नगरों के विस्तार के लिए, पेड़ पौधे काटे जा रहे हैं- कितने पुराने बाग बगीचे कट कट कर बर्बाद हो रहे हैं-और इन्सानी तहज़ीब कि तरह ठोकरें खा रही है ? इस पहलू को बड़ी तहदारी और गहराई से मज अमजद ने अपनी एक नज्म मे बयान किया है—

बीस बरस से खड़े थे जो उस नहर के द्वार,
झूमते खेतों की सरहद पर बांके पहरेदार
घने सुहाने छांव छिड़कते बोर लदे छतनार,
बीस हजार में बिक गए सारे हरे भरे अशजार[1]
गिरी धड़ाम से घायल पेड़ों की नीली दीवार
कटते बैंकल, झड़ते पन्जर, छुटते बर्ग[2] बो बार।
सहमी धूप के जर्द कफन में लाशों के अंबार[3],
आज खड़ा मैं सोच रहा हूं, गाती नहर के द्वार,
इस मकतल[4] में सिर्फ इक मेरी सोच लहकती जान,
मुझ पर भी अब कारी जर्ब[5] इक, ऐ आदम के लाल।

इस नज्म में शायर 'मजीद अमजद' ने बड़ा तीखा व्यंग्य किया है कि ऐ आदम के लाल-अब तो मैं ही नहर के द्वार खड़ा सोच रहा हूं-पेड़ों की तरह अब मुझे भी तुम काट दो।

पाकिस्तान के निरन्तर फौजी शासन की स्थिति और उत्पीड़न को 'जोश मलीहाबादी' ने भी अपनी नज्मों के माध्यम से व्यक्त किया है। इस सम्बन्ध उनकी नज्म 'चना जोर गरम'—बड़ी ख्याति रखती है—

मैं कराची में हूं, जिस तरह से कूफे मे हुसैन,
सब कयामत[6] के हैं आसार,[7] चना जोर गरम।

अर्थात् जोश अपने लिए कराची को कूफा से उपमा देते हैं। कूफा, व स्थान है जहां हजरत इमाम हुसैन को यजीद की सेना ने शहीद कर दिया था

---

1. पेड़ 2. पंक्तियां 3. ढेर
4. कत्लगाह 5. गहरा प्रहार 6. प्रलय
7. लक्षण

'चना जोर गरम' की टीप पाकिस्तान के पंजाबी कल्चर में बड़ी उपयुक्त है। इसमें हास्य तथा व्यंग्य की पुट है।

'जोश' के मरसियों में भी कर्बला की पृष्ठभूमि मे पाकिस्तान का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया गया है —

जब हुकूमत कसर हाए मोदलत[1] ढाने लगे,
जब गरूरे इक्तेदार[2], इकदार[3] पर छाने लगे,
खुसखी[4], आईने[5] पर जब आग बरसाने लगे,
जब हुकूके नौए-इन्सानी[6] पर आंच आने लगे,
रन[7] में दर[8] आ बाजुये शेवर शिकन[9] से काम ले
उन मवाके पर हुसैनी बांकपन[10] से काम ले।

अर्थात् जब हुकूमत न्यायालयों को समाप्त करने लगे, जब ताकत मूल्यों पर अभिमान तथा गर्व छा जाए, बादशाहत संविधान पर आग बरसाने लगे, जब मानव अधिकारों पर आंच आने लगे तो रण क्षेत्र में हज़रत अली के बाजुओं की शक्ति से काम लेना चाहिए और ऐसे अवसरों पर हज़रत इमाम हुसैन की शहादत और सरफ़रोशी के तेवर और बांकपन से काम लेना चाहिए।

'जोश' ने अपनी मरसिया निगारी में इस बात को आक्रोश के रूप में दर्शाया है कि जब 'तख्त' पर क्रूर, क्रूर शासक आसीन हो तो उसकी आज्ञा का पालन करना ही नास्तिकता है। जब जनता का गूदा मंहगाई खाने लगे, जब जाहिलो की जुबान पर लनतरानियां हों–तो उस समय भी 'जोश' इन्सानियत के शहीद 'हज़रत इमाम हुसैन' के सन्देश को याद करने और उनके अमल को दुहराने की बात करते है—इस की प्रासंगिकता पाकिस्तान के क्रूर तथा जालिम परिवेश मे बड़ी हद तक तर्क संगत हो जाती है।

'अख्तर हुसैन जाफरी गुजरान वाला' की नज्में भी पाकिस्तान में उभरते हुए प्रतिरोध के स्वर को सबल बना रही है। वहां के शायरो और अदीबों पर किस तरह कोड़े बरसाये जाते रहे है और इस्लाम व कुरआन के नाम पर जिस प्रकार जनता के जज्बात के साथ खिलवाड़ किया जाता रहा है उसकी एक झलक अख्तर हुसैन जाफ़री की नज़्म 'एक नगमा पाकिस्तान के लिए' में आसानी से मिल जाती है :—

जीवे पाकिस्तान

1. न्याय के महल
2. ताकत का गर्व
3. मूल्यों
4. नाड़ी
5. संविधान
6. मानव जाति
7. रण
8. दाखिल होना
9. हजरत
10. हज़रत इमाम हुसैन का बांकपन

कूचा कूचा क़ातिल है तो कदम कदम मक़तूल,[1]
नख़वत,[2] नफ़रत धोने उठ्ठी राह गुज़र की धूल,
हर ज़र्रा है यहा मुजाहिद, हर क़तरा त्रिशूल,
घोड़ों की टापों से बढ़ कर, आज़ादी की तान,

जीवे पाकिस्तान ।

मशअल[3], मशअल ख़ून बहाने वालों तुम्हें सलाम,
आग में तप कर फूल खिलाने वालों तुम्हे सलाम,
'फ़ैज,'[4] 'फ़राज', और 'जालिब' जैसे ग्वालो तुम्हें सलाम,
वह उठ्ठे सिन्धी, पजाबी, उठ्ठे बिलौच पठान,

जीवे पाकिस्तान ।

कैसी घुटन थी जिसको तुमने अपने ख़ून से धोया,
अंधियारा हंसता था हर सू, देख सवेरा रोया,
कैसा बोझ था कर्ब[5] कि जिसको तुमने बरसो ढोया,
ख्वाबों के गुलजार खिला दो, धरती है वीरान,

जीवे पाकिस्तान ।

फौजी बूटों ने जो राहें की थी पारा,[6] पारा,
अब इन पर चमकेगी मुहब्बत, जागेगा उजियारा,
दागे जाने वाली पेशानी से फूटेगी नूर की धारा,
आजादी ही दीन है यारो, आजादी कुरआन,
आलिम, फाजिल बेच रहे है अपना दीन ईमान ।

इस वातावरण मे जहा ज्ञानी और बुद्धिजीवी लोग अपना दीन-ईमान बेच रहे हो, फौजी बूटों से मुहब्बत को टुकड़े टुकड़े किया जा रहा हो, जहा हर गली-कूचा कातिल बना हुआ हो, हर कदम मकतूल हो, जहा आजादी की तान घोड़े की टापो के नीचे दबाई जा रही हो, फिर भी आजादी के नारे गूंज रहे हो, अंधियारा चारों ओर हँस रहा हो और सवेरा देख कर रो रहा हो—इस परिस्थिति को एक सच्चा शायर जिसके सीने में धड़कता हुआ दिल हो, अपनी शायरी में बड़ी व्याकुलता से ढाल देता है ।

1. जिसे कत्ल किया गया हो 2. अहंकार 3. मशाल
4. फैज अहमद फैज, अहमद फराज, हबीब जालिब आदि को जेल की यातना के साथ कोड़े भी लगवाए गए है ।
5. उत्पीडन
6. टुकड़े टुकड़े

'हबीब जालिब' पाकिस्तान का निडर और ज्वाला शायर है, वह अपनी नज़्मों में दहकते हुए अंगारो को सजाने का सलीका जानता है। वह अल्लामा 'इकबाल शती समारोह' के मुशायरे मे आए तो मच पर कहा कि —अल्लामा इकबाल ने कर्त्तव्यों के पालन के लिए कहा था—

"उठ्ठो मेरी दुनिया के गरीबो को जगा दो"

और मैं गरीबों के जगाने के जुर्म में अब तक पन्द्रह बार जेल का मेहमान बन चुका हूँ–फिर उन्होंने अपनी एक नज्म उसी मुशायरे में पढ़ी—

लोग उठते हैं जब तेरे गरीबों को जगाने,
सब शहर के जरदार[1] पहुंच जाते है थाने,
कहते है यह दौलत हमें बख्शी है खुदा ने,
फरसूदा[2] बहाने, वही अफसाने पुराने,
ए शायरे मशरिक[3] यही झूठे, यही बदजात[4],
पीते है लहू बन्दएं मजदूर का दिन रात।

'हबीब जालिब' कह रहे है कि जब गरीबों, मजदूरों, बेकसों को जगाया जाता है, उन्हें झिंझोड़ा जाता है कि अपने अधिकारों को समझ लें तो शहर के जितने पूंजीपति है,उन्हें जेल भिजवाने का प्रयत्न करते है और अधिकारों की रक्षा एक जुर्म बन जाती है। अपने धन-दौलत को वें खुदा की देन कहते हैऔर पुराने सड़े गले तर्कों से भांति भांति के बहाने होले ढूंढने लगते हैं। ऐ ! पूर्व के शायर (Poet of the East) ये कमीने लोग मजदूरों का दिन रात खून चूसते है।

'हबीब जालिब' अपनी एक दूसरी नज्म में पाकिस्तान का चित्रण बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं—

ऊंचे ऊंचे ईवानो[5] में मूरख[6] हुकम चलाए,
कदम कदम पर इसी नगरी मे पंडित धक्के खाएं,
धरती पर भगवान बने है धन है जिनके पास,
भए कबीर उदास।
गीत लिखाएं पैसे न दें फिल्म नगर के लोग,
उनके घर बाजे शहनाई लेखक के घर सोग[7],
गायक सुर में क्योंकर गाए, क्यों न काटे घास,
भए कबीर उदास।

---

1. पूंजीवादी 2. सड़े पुराने
3. डा. इकबाल को मशरिक अर्थात् पूरब का शायर कहते है।
4. कमीने
5. सदनों 6. मूर्ख 7. शोक

कल तक था जो हाल हमारा, हाल वही है आज,
'जालिब' अपने देश में सुख का हाल वही है आज,
फिर भी मोचीगेट[1] पे लीडर रोज करें बकवास,
मए कबीर उदास।

उपरोक्त नज्म में व्यवस्था के प्रति हबीब जालिब के विचार स्पष्ट हैं। मूर्खों का राज्य है और वही सत्तारूढ़ है। ज्ञानियों के भाग्य में धक्के ही खाते रहना लिखा है। पाकिस्तान का हाल जो कल था वही आज भी है उसी प्रकार से अभावों का रूप है; मोचीगेट के सभास्थल में लीडरों की बकवास से कोई निराकरण निकलने वाला नहीं है। राज सिंहासन पर विमूढ़ विराजमान है और विद्वान शीतकाल में सड़क की पटरियों पर बैठे हुए अपनी तकदीर पर आंसू बहा रहे हैं।

जमाअते इस्लामी के मौलवियों ने वर्तमान फौजी शासक की हिमायत की और वही भाग्य और फिर शुक्र अदा करने की बातें दुहराना शुरू की जिससे खुदा के नाम से धर्मभीरू जनता को बहलाया जा सके। लेकिन जमाअते इस्लामी एक राजनीतिक पार्टी है और उसका सीधा सम्पर्क अमेरिका से है इस पर 'हबीब जालिब' जैसा जागरूक शायर चुप न रह सका—

बहुत मैंने सुनी है आपकी तकरीर[2] मौलाना,
मगर बदली नहीं अब तक मेरी तकदीर मौलाना।
खुदा रा[3] शुक्र की तलकीन[4] अपने पास ही रक्खें,
ये लगती है मेरे सीने पे बन कर तीर मौलाना।
हकीकत क्या है, यह तो आप जानें या खुदा जाने,
सुना है जिम्मी कार्टर आपका है पीर[5] मौलाना।
जमीनें हों वडीरों की मशीनें हों लुटेरों की,
खुदा ने लिख के दी है यह तुम्हें तहरीर मौलाना।
करोड़ों क्यों नहीं मिल कर फ़िलस्तीन के लिए लड़ते,
दुआ[6] ही से फकत कटती नहीं ज़ंजीर मौलाना।

इस नज्म के माध्यम से पाकिस्तान की अर्थ-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है जहां अमरीकी साम्राज्यवाद की पूर्ण परछाइयां है। जमीनें और मशीनें दोनों विदेशी 'लुटेरों' की है, पाकिस्तान के मुकद्दर में ही अमरीका और जिम्मी कार्टर की गुलामी लिख उठी है। करोड़ों की संख्या में होते हुए भी फिलस्तीन के मज़लूमों

1. लाहौर में मोचीगेट, राजनीतिक पार्टियों के भाषणों का स्थान।
2. भाषण 3. खुदा के लिए 4. सीख
5. धर्म-गुरु 6. आशीर्वाद-प्रार्थना

के लिए क्यों मैदान में नहीं आते, केवल मस्जिदों में दुआएं मांगने से ही जन्जीरें नहीं कटतीं है इसके लिए व्यावहारिक रूप से सामने आने की जरूरत है। स्मरण रहे कि पाकिस्तान में मुल्लाओं का एक वर्ग वहां के क्रूर शासक का हिमायती है और मौखिक रूप से भी फिलस्तीन समस्या पर सहानुभूति नहीं प्रकट करता है। फिलस्तीन समस्या पर 'मुजरिमाना खामोशी' अपनाए हुए है, जो अपने आप में एक बहुत बड़ा जुर्म है।

खुशामद का बोलबाला सम्पूर्ण समाज में है। जो शासकों के गुण गान करते है वही पुरस्कृत होते हैं। इसका चित्रण 'जालिब' की एक 'मसनवी' में प्रस्तुत किया गया है। कुछ अंश पेश किये जाते है—

हुए थाका फिरंगियों के गुलाम,
शबे आलाम[1] हो सकी न तमाम।
हुकमरां हो गए कमीने लोग,
खाक में मिल गए नमीने लोग,।
बेहयाई को जिसने अपनाया,
वही इज्जत मआब[2] कहलाया,
आमिरों[3] के जो गीत गाते रहे,
वही इनआम ओ दाद[4] पाते रहे।

इन्हीं की एक नज्म 'दस्तूर' के कुछ अंश पेश किए जाते है। 'जालिब' उस 'दस्तूर' (संविधान) को नहीं मानते जिसने महलों के लोगों की ही कल्याणकारी योजनाए हों —

दीप जिसका महल्लात ही में जले,
चन्द लोगो की खुशियों को ले के चले;
वह जो साये में ही मसलहत के पले,
ऐसे दस्तूर को, सुबहे बेनूर को,
मैं नहीं जानता, मैं नहीं मानता।
फूल शाखों पे खिलने लगे तुम कहो,
जामरिन्दों का मिलने लगे तुम कहो,
चाक सीनों के सीने लगे तुम कहो,
इस खुले झूठ को, जहन की लूट को,
मैं नहीं मानता, मैं नहीं जानता।

1. दुखों की रात
2. आदरणीय
3. शासको
4. प्रशंसा,

1980 ई. में जब पाकिस्तान के हुकमरानों ने 'इस्लाम खतरे में है' का नारा दिया और जिसके नतीजे में प्रगतिशील संस्थाओं और लोकतांत्रिक विचारधारा में विश्वास रखने वालों को निशाना बनाया गया, उस घड़ी हबीब जालिब की आवाज़ शोला बनकर लपकती है,—

खतरा है जरदारों को,
गिरती हुई दीवारों को,
सदियों के बीमारों को,
खतरे में इस्लाम नहीं।
सारी ज़मी को घेरे हुए है आखिर चन्द घराने क्यों,
नाम नबी के लेने वाले उल्फ़त से बेगाने क्यों ?
खतरा है खूंख्वारों, को रंग-बिरंगी कारों को,
अमेरिका के प्यारों को, खतरे में इस्लाम नहीं।

जमाअते इस्लामी एक प्रतिक्रियावादी राजनैतिक पार्टी है। उसने यह नारा दिया कि पाकिस्तान का मतलब केवल—'लाइलाहा इल्लाल लाह' है। 'जालिब' ने इसी नारे से एक अनूठी बात पैदा कर दी जो उनकी एक नज़्म में ज्वालामुखी बन कर उबलती है—

अमेरिका से मांग न भीख, मत कर लोगों की तज़हीक[1]
रोक न जमहूरी तहरीक[2] छोड़ न आजादी की राह,
पाकिस्तान का मतलब क्या ? ला इलाहा इल्लला लाह।
भीक लुटेरों से न ले,
भीक अन्धेरों से न ले,
रहे न कोई आली जाह,
पाकिस्तान का मतलब क्या ?
ला इलाहा इल्लाल लाह।

'जालिब' की सब से सशक्त नज़्म 'ब रूहे कायदे आज़म' है जिसमें उन्होंने पाकिस्तान पर अमरीकी साम्राज्यवाद के वर्चस्व की घोर भर्त्सना की है और कायदे आज़म मोहम्मद अली जिन्नाह के स्वप्नों के पाकिस्तान की खुले शब्दों में अवहेलना की है, क्योंकि वहां आजादी के स्थान पर दासता और बर्बरतापूर्ण नियम बनाए गए हैं जिस पर एक बर्बर शासक आसीन है,—

तुमने कहा था अब न चलेगा, महलों का दस्तूर,
बनेगी वह कानून, जो होगी बात हमें मन्जूर,

---

1. अपमान 2. लोकतांत्रिक आन्दोलन

हर इक चेहरे पर चमकेगा, आजादी का नूर,
लेकिन हमको बेच रहा है, इक जाबिर[1] सुल्तान,
कायदे आजम[2] आ के देखो, अपना पाकिस्तान।
कितने सर कटवा के हमने मुल्क बनाया था,
दार[3] पर चढ़ कर आजादी का गीत सुनाया था,
इस धरती से अंग्रेजों को दूर भगाया था,
इस धरती पर आज मुसल्लत है उनके दरबान,
कायदे आजम आ के देखो, अपना पाकिस्तान।
जंग छिड़े तो हम निर्धन ही उनके बैंक बचाए,
दौलत वाले महल में बैठे थर थर कांपे जाए,
मुल्क की खातिर हम अपने सीनो पर गोली खाएं,
फिर भी भूखे, नंगे, बावा हम मजदूर किसान,
देख रहे हो कायदे आजम, अपना पाकिस्तान।

इसके अलावा पाकिस्तान की उर्दू शायरी की विभिन्न विधाओं में वहाँ की शासन व्यवस्था के प्रति गहरा प्रतिरोध व्यक्त किया गया है। 'अहमद फराज' अपने शेर में कहते है कि हम कोई पद अथवा उपाधि, पुरस्कार नही चाहते, हम लोग तो अदीब और शायर हैं, हमें बोलने की इजाजत दे दो, क्योंकि हम लोग आवाजों को जन्म देने वाले है—

कब हम ने कहा था, हमें दस्तार[4] वो कबा[5] दो,
हम लोग नवागर[6] हैं, हमें इज्ने नवा[7] दो।
इस मौसम में गुलदानों की रस्म कहां है,
लोगों अब फूलो को आतिश दान मे रखना।
कातिल इस शहर का जब बाट रहा था मनसब[8],
एक दरवेश भी देखा उसी दरबार के बीच।
मुझे तो डर है कि शेखे[9] हरम के हाथो से,
कहीं मेरी तरह रूसवा[10] रसूल[11] वो रब[12] भी न हों।

पाकिस्तान के उर्दू शायरों ने अपने आक्रोश को प्रस्तुत करने के लिए रूपक का सहारा लिया है वह अपनी बातो को बड़े ढंग से रूपकीय बना कर रखते हैं। जैसे—

1. क्रूर निर्दयी शासक 2. जिन्नाह साहब की उपाधि अर्थात् बड़े रहबर
3. फांसी 4. टोपी 5. लिबास
6. आवाजो को जन्म देने वाले 7. बोलने की इजाजत
8. पद 9. मस्जिद के बुजुर्ग 10. बदनाम
11. पैगम्बर 12. खुदा

बज़्मे मक़्तल[1] जो सजे कल तो यह इमकान[2] भी है,
हम से बिस्मल[3] तो रहें, आप सा क़ातिल न रहे

—अहमद फ़राज़

अब घर से निकल आए फिर किस का पता रखना,
क़ातिल पे भी रोने को कुछ अश्क बचा रखना।

—शोहरत बुख़ारी

शायरी में ये रूपक कलात्मकता का सुन्दर उदाहरण हैं। इनमें मायूसी के साथ एक उमंग भी है लेकिन इस उमंग में डर, क्षोभ और असमंजस की स्थिति है।

---

1. क़त्लगाह 2. सम्भावना 3. तड़पने वाला

3

नस्र (गद्य)

गद्य की विभिन्न विधाओं में लेखकों ने अपनी कुंठाओं तथा क्रोध को दर्शाने का प्रयत्न किया है किन्तु गद्य में यह लय इतनी प्रभावी नहीं है जितनी कि शायरी में है। फिर भी उपन्यासों, नाटकों, कहानियों के अलावा लेखों में हास्य तथा व्यंग्य के माध्यम से आक्रोश खुल कर सामने आता है।

कथा साहित्य में 'अनवर सज्जाद', 'इन्तजार हुसैन', 'मुस्तनसर' हुसैन, सईदा गजदर आदि के नाम प्रमुख है।

'मुस्तनसर हुसैन' के यहां 'ताड़ का दरख्त' [1] एक रूपक के तौर पर प्रयोग किया गया है। एक ऐसा व्यक्ति है जिसका नाम लेना उचित नहीं, उसे एक लकड़हारा काट रहा है। लकड़हारा कहता है कि वह इसकी जगह पर दूसरा वृक्ष लगा देगा—

लेकिन लकड़हारे तो दरख्त काटते हैं।
उगाते है नहीं।
ठीक है, ताड़ कहता है।

"लोग जानते हैं कि पौधे की छांव इतनी घनी नहीं होती; मगर फिर भी नदी को पार करने वाले मुसाफिरों की अधिक संख्या अब उसके साये-तले काम करती हैं।

"और वहां खत्म होती है तो यूं।.........जब बलन्दी पर तालियां बजाते पत्तों और जमीन में दूर तक उतरी हुई जड़ों के नीचे केवल एक रग[2] बाकी रह गयी तो, एकदम लकड़हारे की हिम्मत जवाब दे गयी। वह चला गया, और अब

1. वृक्ष 2. नस

आहिस्ता-आहिस्ता दरख्त के गहरे जख्म भर रहे हैं—क्योंकि जिस वजूद की जड़ें *ज़मीन में दूर तक फैली हों, ज़मीन उसे कभी अपने से जुदा नहीं करती।"*

उपन्यास के क्षेत्र में यहां अब तक कोई ऐसा उपन्यास नहीं आया है जिसे प्रतिरोध का द्योतक कहा जा सके। हां, जमीला हाशमी का उपन्यास 'तलाशे बहारां' ऐसा है जो क्षेत्रीय सभ्यताओं का प्रतीक है और पाकिस्तान में उत्पन्न होने वाले कुछ नवीन प्रथाओं की झलकियां प्रस्तुत करता है।

'हास्य तथा व्यंग्य' के पुट से भी कुछ लेखक प्रभावी बने हैं जिसमें मुश्ताक अहमद युसुफी, कर्नल मोहम्मद खान, इब्राहीम जलीस तथा मजीद लाहौरी के नाम लिए जा सकते हैं। इस सन्दर्भ में 'मुख्तार जमन' का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने अपने निबन्ध 'इकबाली मुजरिम' में बड़ी तीखी काट की है। डॉ० इकबाल के प्रसंग से निबन्ध प्रारम्भ होता है और उन्हीं के अशआर से तर्क करता हुआ, वहां की इन्तहा पसन्दी तथा अंधाधुन्ध विमूढ़ताओं पर कुठाराघात करता है।

नाटकों में भी तीखापन नहीं पैदा हो सका है फिर भी 'इब्राहीम जलीस' जैसे कुशल नाटककार इस ओर अग्रसर हैं। उनका नाटक 'काठ की गुड़िया' *विषय तथा कला की दृष्टि से सशक्त है और इसमें पाकिस्तानी जीवन की कशमकश* झलकती है।

नाटक इस प्रकार है कि चार मित्र थे, रोजगार की तलाश में घरों से निकलते हैं। रात हो जाती है। रात एक जंगल में बसर करते हैं। उसमें एक बढ़ई, दूसरा दर्जी, तीसरा सुनार, और चौथा बड़ा मजहबी (धार्मिक) है। चारों मित्र पाकिस्तान के चारों प्रान्त के निवासी हैं। जंगल में सब बारी-बारी पहरा देते हैं।

बढ़ई समय बिताने के लिए लकड़ी की एक गुड़िया बनाता है। जब दर्जी पहरा देने जाता है तो वह उसे कपड़ा पहनाता है। सुनार उसे आभूषणों से सुसज्जित करता है और अन्त में मजहबी (धार्मिक) आदमी खुदा से दुआ करता है और वह काठ की गुड़िया सजीव हो जाती है। सुबह होती है और चारों दोस्त उस गुड़िया पर अपना-अपना अधिकार बताने लगते हैं। झगड़ा बढ़ता है। झगड़ा हल करने के लिए एक राहगीर की सहायता ली जाती है। वह कहता है कि "वह तो मेरी बीवी है, मैं उसे ही ढूंढने निकला हूं और आज एक लम्बे समय से ढूंढ-ढूंढ कर थक गया हूं।" अन्त में अब पांचों बादशाह के यहां निर्णय कराने पहुँचते हैं। बादशाह निर्णय देता है कि यह सुन्दर युवती, वास्तव में उसकी दासी है जो खो गयी थी और अपने महल में डाल देने का हुक्म दे देता है और पांचों को अपहरण के अभियोग में जेल भेज दिया जाता है। फिर जेल में पांचों विचार करते हैं

कि हम लोगों के आपसी कलह से ये दुर्दिन देखने को मिले। वे एक हो जाते है और मिलकर 'जेल के दरवाजे को तोड़ देते हैं। नाटक कोरस पर समाप्त हो जाता है।

नाटक विषय-वस्तु, कला तथा प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से सबल और संदेशात्मक है।

पाकिस्तान में प्रचलित चुटकलों तथा लतीफों से भी वहां के आक्रोश को समझा जा सकता है—

सेना पर व्यंग है कि—"ढाके की गधी, लाहौर में आकर खड़ी है।"

बंगला देश के बन जाने के बाद यह वाक्य दुहराया जाता रहा कि, जिन्नाह साहब का आधा आभार तो उतार दिया है—बाकी आधा भी जल्दी ही उतार देंगे।

सैनिक शासन से ऊबे हुए लोगों का चुटकला है कि—'अय्यूब खान', एक बार फिल्म देखने गए। कम्बल ओढ़ कर अगली पंक्ति में बैठ गए। पहले 'जिनाह साहब' की तस्वीर दिखाई गयी। कुछ लोगो ने ताली बजायी। फिर डॉ० इकबाल की दिखायी गयी। कुछ लोगों ने तालियां बजायी, फिर जनरल अय्यूब खान की तस्वीर दिखायी गयी, पूरा हाल तालियों से गूंजने लगा। यह बहुत खुश हुए, बराबर बैठे हुए दर्शक ने कहा, "हरामजादे, ताली बजा नहीं तो फौजी पकड़ ले जायेंगे।"

जनरल अय्यूब खान से ही चुटकले प्रसिद्ध है—मरने के बाद किसी पाकिस्तानी से फरिश्तों ने सवाल किया—कि तुम्हारा पैगम्बर कौन ? जवाब मिला जनरल अय्यूब खान। किताब कौनसी है ? जवाब मिला—मित्र नहीं मालिक (Friends not Masters)।

फरिश्ते उसको खुदा के पास ले गए और कहा कि ऐ खुदावन्द। यह तो नए पैगम्बर का नाम बताता है। अल्लाह ताला को वहां विराजमान देखा तो मुर्दा बोला, "हम तो समझे थे कि कहीं ये फरिश्ते अय्यूब खान के जासूस न हों।"

जनरल ज़िया-उल-हक़ से सम्बन्धित यह चुटकुला भी प्रचलित है कि जब इस्लामी कानून का प्रचलन होने लगा तो 'मुर्गे' ने जनरल ज़िया-उल-हक की खिदमत में हाज़िर-होकर अर्ज़ कि—"मुझे अब यहां से जाने दीजिए।" उन्होंने पूछा कि क्यों ? मुर्गे ने जवाब दिया कि—"अब हमारी जरूरत इस मुल्क को नहीं। सुबह जगाने के लिए मेरे बोलने से पहले ही मुल्ला बांग देने लगता है।"

कुत्ते ने हाजिर होकर कहा, "जनरल साहब अब मुझे भी मुल्क से बाहर जाने की इजाज़त दी जाय।" पूछा गया कि क्यों? जवाब मिला—"अब यह सरज़मीन इतनी पाक (पवित्र) हो गयी है कि मेरी जगह नहीं है।"

गधा आगे बढ़ा, उसने भी मुल्क से जाने की बात दुहराई। उससे भी कारण पूछा गया। उसने कहा, "अब तो यहां एक ही के रहने की जगह है।"

इन चुटकुलों और लतीफों से भी वहां व्याप्त असन्तोष का अनुमान किया जा सकता है। इनमें हास्य तथा व्यंग्य की अनूठी पुट है। इससे सामाजिक धरातल पर मनःस्थिति का अन्दाज़ा सरलता से हो सकता है।

कुछ चुनी हुई कहानियां तथा निबन्ध

ये वह साहित्यिक सामग्रियां है जो बार बार पढ़ने और सोचने पर विवश करती है। इसमे पाकिस्तान समाज के उत्पीड़न, स्पन्दन तथा छटपटाहट को सरलता से महसूस किया जा सकता है। इनमें गहरा भाव, तीखा व्यंग्य, सहानुभूति तथा वास्तविक स्थिति कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई है। इनके दर्पण में पाकिस्तान के वर्तमान सामाजिक दर्द को महसूस किया जा सकता है।

बारिश का आखरी कतरा

—रजिया फसीह अहमद
—अनु० –डा० फज़ले इमाम

'तो दादा जान फिर इजाज़त है ?' मैंने पूछा।

'नहीं भई ! आदमी वह काम करे जिसे वह ईमानदारी से कर सके और यथासम्भव कमाल तक पहुंचा सके, जिस काम में यह ये दो बातें न हों, उससे मैं भाड़ झोंकने को बेहतर समझता हूं।'

दादा कब से यही बातें किये जाते थे मगर मेरे ऊपर उनका कुछ असर न होता था। ये बाम ह वाह की शायराना बातें करते हैं। आखिर और हजारों लाखो भी तो यही काम कर रहे है।

'हां करते होगे, मगर एक सच्चे और ईमानदार आदमी का क्या हाल होता है, यह देखना हो तो कल मेरे साथ चलना।'

दूसरे दिन मैं उनके साथ गया। शहर की चौड़ी सड़क छोड़कर हम अन्दर की ओर एक कच्ची और खस्ता हाल सड़क पर मुड़े, जिसके दोनों ओर टीन के छोटे छोटे केबिन या आधी पक्की दुकानें थी। इन टीन के केबिनों में कोई सायकिल मरम्मत की दूकान थी, कुछ एक बिसाती और पनवाडी थे, एक आध हेयर कटिंग सैलून थे। अब पक्की दूकानों में मिठाई और गोश्त की दूकानें भी थी जिनमे मक्खियो की भीड़ आदमियों से जरा ज़यादा थी। जगह जगह मैले पानी की नहरें और उबलते गटरो के चश्मे थे। दादा ने वह सड़क भी छोड दी और घरों के दरमियान टेढे मेढे रास्तो पर मुड़ते आगे बढने लगे। खुदा मालूम दादा को कैसे इस जगह का रास्ता याद था। मुझे तो सब जगह एक से केबिन, एक से घर, एक सी झुग्गियां, एक से नगे धिड़ंगे बच्चे और एक सी काली दुबली औरते चलती फिरती नज़र आ रही थी। दादा खडे ठेलों, बडी बडी हैरान आंखो वाली गायों और बकरी की जगह जगह बिखरी मेंगनियों से बड़ी महारत से बचते चले जा रहे थे और मैं उनके पदचिन्हों पर पांव धरता चला जा रहा था। आखिरकार, दादा एक घर के सामने जा ठहरे जिसकी दीवार पर बडा बडा लिखा हुआ था 'गुलशन क्रिकेट क्लब'। असल मे यह क्लब की इमारत नही थी क्योंकि इस क्लब की इमारत का कहीं वजूद ही नही था। इस क्लब के समस्त सदस्य उस वक्त सामने के पथरीले मैदान में क्रिकेट खेलने मे व्यस्त थे। दादा के पुकारने पर एक लड़का खेल छोड़, बल्ला हाथ मे लिए भागा हुआ आया।

'तुम्हारे नाना हैं ?' दादा ने पूछा।

'जी हां !'

'जाकर बताना कि अब्दुल समद आए है।'

ज़रा देर मे पर्दा हो गया और वह लड़का हमें घर मे ले गया। पहले एक कच्चा सहन आया जिसकी अलगनी पर बेशुमार कपड़े पड़े हुए थे। और इधर उधर चारपाइयों, मोढ़ों और पीढ़ियों की अधिकता थी। इसके बाद एक छोटे से बरामदे से गुज़ारा कर वह एक बड़े कमरे में ले गया जो एक ही समय में ड्राइंग रुम, खाने और सोने का कमरा था। उससे आगे एक छोटी सी जगह थी, जहां हमें छोड़कर वह ऐसा भागा कि पलट कर न देखा। इसलिए कि सारा क्रिकेट क्लब, उस समय उसका वहा इन्तज़ार कर रहा था। खुर्री चारपाई पर एक अधेड़ आयु के खपच्ची से बुजुर्ग दुनिया जहान से बेखबर बैठे थे।

'अस्सलाम अलैकुम-भाई जमाल। क्या हाल हैं ?' दादा ने खासी गर्म जोशी से कहा।

उन्होंने नज़र उठाकर दादा की तरफ़ देखा। एक लहमे के बाद कहा, 'आप तो मेरी बेटी का सुराग़ लगाने गये थे ना, पता चला ?'

दादा ने मुजरिमो की तरह सर झुका कर शोक के लहजे में कहा 'नहीं'।

'तो फिर क्या ज़रूरत थी आने की....देख ली आपकी दोस्ती'। उनके लहजे मे झल्लाहट स्पष्ट थी। कुछ देर चुप रहने के बाद दादा बोले 'यह मेरा पोता है, अख़बार में जाने को कहता है।'

'कहा जाने को कहता है ?'

'कहता है जर्नलिस्ट बनूंगा.? अख़बार में काम करूंगा।'

'इससे कहो, कोल्हू में जुत जाए, तेल निकाला करे....हज़ार दर्जे बेहतर है। आख़िर तेल तो ख़ालिस (शुद्ध) निकलेगा ना। सरसों ख़ालिस होगी तो तेल भी ख़ालिस ही निकलेगा, क्यों भाई ?'

'जी सही फ़रमाया आपने', दादा ने भक्ति-भाव से कहा।

'और हमारी बेटी का कही पता नही चला अब तक ?'

'जी नहीं'.

'मर गयी होगी....दफ़न कर दिया होगा किसी बदबख़्त ने....क्या ख़बर दफ़न भी किया, या यूं ही पड़ी रही हो....तार तार हो गए होंगे उसके कपड़े। उसके काले बालो में मिट्टी भर गई होगी। हे भाई ! कैसी ख़ूबसूरत बनी थी वह। इन्साफ़ से कहना लाखों में एक लग रही थी कि नहीं ?'

'बेशक' दादा ने फिर गर्दन झुका ली, जैसे उन की बेटी के अपहरण करने में दादा का ही हाथ हो। 'कैसे सज रहे थे सुर्ख़ कपड़े उस पर, कैसा ख़ूबसूरत ज़ेवर पहना था उसने, बालों में अफ़शा थी और आंखों में .... फिर क्या हुआ भाई समद ! उसके शौहर मुच्चे ने तो उसकी

थी, छोड़कर भाग गया था....और फिर सबने कैसे उसके पत्थर मारे थे, कैसा उसे लहूलुहान कर दिया था। उस बेचारी का क्या कसूर था, जो ऐसा संगसार किया उन लोगों ने। उन्ही लोगों ने जिन्होंने उसे दुल्हन बनाया था। मैं उसकी वह मासूम सूरत नही भूल सकता भाई समद। कैसी कैसी टुकर टुकर देख रही थी हमारी तरफ। उसके जख्मों से खून रिस रहा था, अफ़शां झड़ गयी थी, काजल बह गया था। मुझसे उसकी यह दुरगत नही देखी गयी। मैं उसे बचाने भागा तो मुझे पकड़ कर जेल में डाल दिया....जेल में डाल दिया....और फिर न जाने मेरी बच्ची कहां चली गई, किधर निकल गई....आप ने भी उसे पनाह न दी भाई समद ? देख ली आपकी दोस्ती।'

वह फिर खामोश हो गये। दादा सर झुका कर नादिम (लज्जित) से बैठ गये।' थोड़ी देर बाद वह फिर बोले 'लोग कहते हैं कि अब उसकी तलाश फ़ुजूल है। उसने खुदकशी कर ली, हराम मौत मर गयी।'

'आप हराम मौत किसको कहते हैं ?' आप जिसे खुदकशी कहते हैं मैं उसे भी कत्ल कहता हूं। कोई इन्सान खुद को नही मार सकता, वह कोई और होता है जो उसे मारता है। जमाने के ताज़ियाने, भूक के कोड़े या कोई और जिस्मानी या मानसिक कष्ट, पहले जिन्दगी के दरवाजे चारो ओर से बन्द कर देते है। फिर अगर कोई चुपचाप मौत के कुएं मे उतरने लगे तो उसको पकड़ लेते हैं और कहते है—यह हराम मौत मरने जा रहा था। और अगर मर जाए तो कहते हैं, उसने खुदकशी कर ली, हराम मौत मर गया। यह नही कहते कि उसे कत्ल कर दिया, संगसार कर दिया। कैसी ज़ालिम दुनिया है यह !!!'

वह फिर गुम सुम अपने ख्यालों मे खो गए, जैसे हम वहां मौजूद ही न हों। मेरी समझ मे कुछ नही आया। यह दादा किस पागल के पास मुझे ले आए है। अगर उनकी बेटी खो गयी तो हम क्या करें। और अगर इसमे दादा का भी कुछ कसूर है तो फिर मैं क्या करूं।

'आओ चलें।' दादा उठ खड़े हुए। 'अब इजाज़त दें भाई जलाल।'

'खुदा की पनाह में।' उन्होंने उसी तरह बैठे बैठे कहा, 'देखो उसकी खोज से ग़ाफ़िल न रहना, लोगों को बकने दो। मेरा दिल कहता है वह मरी नही है। एक दिन उसे जरूर मेरे पास लेकर आना। वरना क़यामत मे तुम सब का गरेबान पकड़ूंगा।'

'खुदा हाफ़िज़।' दादा सर झुका चले। पीछे पीछे मैं हैरान और परेशान। धड़े कमरे से निकल रहे थे कि सात आठ साल का एक लडका छोटी सी ट्रे में शरबत के दो गिलास लिए चला आ रहा था। उसने वही हमे पेश कर दिये। हमने इन्कार किया, उसने इसरार किया। आखिरकार वहीं खड़े खड़े वह शरबत जहर मार किया और बाहर निकल आए। फिर वही रास्ता तय करना पड़ा।

इतनी जगह नहीं थी कि हम दोनों साथ साथ चल सकते। इसलिये दादा आगे आगे चल रहे थे और मैं पीछे पीछे। अब मैंने देखा कि गुलशन क्रिकेट क्लब की अगली दीवार पर 'आफताब फुटबाल क्लब' था जिसके साये में कुछ लड़के फुटबाल खेलने के बहाने धूल उड़ा रहे थे। उसके आगे 'महताब बास्केटबाल क्लब' था। इन सब क्लबों के बीच से निकलते, पानी की छोटी छोटी गन्दी लहरों से बचते और नंगे बच्चों को तकते हम फिर उसी कुएं वाली सड़क पर निकल आए।

'देखा तुमने ?' दादा ने पलट कर मुझसे पूछा।

'जी देखा।' मैंने कहा।

'क्या समझे ?'

'कुछ भी नहीं समझा।'

'भाई जलाल एक जमाने में बड़े जर्नलिस्ट थे। उन्होंने आज़ादी-ए-इज़हार (विचारों की स्वतन्त्रता) की तहरीक चलायी थी। कई साल पहले की बात है कि उन्होंने बड़ा लम्बा जुलूस निकाला था और बड़ा ओजस्वी भाषण दिया था और तमाम लोगों से शपथ ली थी कि आइन्दा सिर्फ वह लिखेंगे जो खुद सही समझेंगे। उस दिन सम्वाददाताओं का जोश देखने योग्य था।' लगता था जैसे हाजियों की भीड़ हो जो हज करके लौट रही हो, और उन्हें यकीन हो कि पिछले सारे गुनाह माफ़ हो गए हैं और अब वह दोबारा बच्चों की तरह मासूम हो गए हैं। हर एक बढ़ बढ़ के बोल रहा था और लगता था कि सच में हर शख्स पिछली गलतियों की मुक्ति के लिए उभार खाए बैठा हो। उस रात हर जर्नलिस्ट के घर में रात गए तक चिराग़ जलता रहा और हर एक ने पूरी ईमानदारी और सच्चाई से सूरते हाल का विश्लेषण कर अपने दिल की बात बरसों बाद और बहुत सों ने शायद जिन्दगी में पहली बार लिखी—मगर उनमें से कोई भी चीज़ अखबार की रोशनाई और दिन का उजाला न देख सकी। रात को ही आने वाले एक जबरदस्त डायरेक्टर ने उन सबको बे मौत मार दिया। मगर भाई जलाल ने अपने अखबार का वह सम्पादकीय ज्यों का त्यों छाप दिया, जो रात को लिखा था और उसके जुर्म में उन्हें दस साल की कड़ी सजा दी गई। वह जो इस उम्मीद में बारिश का पहला कतरा (बूंद) बनकर ऊपर से गिरा था कि पिछले कतरों (बूंदों) का एक समुद्र होगा, बारिश का आखिरी कतरा बन कर झुलसती रेत में जज़्ब हो गया। आदर्श बड़ी चीज़ है मगर तनहाई बड़ी भयानक चीज है। चाहे आप काल कोठरी में तनहा हों मगर यह अहसास कि आप लोगों के मानस में मौजूद हैं, कुछ सरफिरे हैं, जो आपके पदचिन्हों पर चल रहे हैं या चलने को तैयार हैं, इस यकीन के बग़ैर सहन करने वाला सिर्फ 'पैग़म्बर' ही हो सकता है और भाई जलाल, पैग़म्बर नहीं थे। वह, यह तनहाई बर्दाश्त नहीं कर सके। जेल ही में उनका ... हो गया और उन्हें वक़्त से पहले ही छोड़ दिया गया।

'मगर वह तो पूरे वक़्त अपनी लड़की का रोना रोते रहे।'

'उनकी कोई लड़की कभी थी ही नही।'

'अच्छा'। मैं हैरान हुआ।

'अरे मियां, तुम समझे नहीं। वह तो उसी शाज़ादी बिटिया का मातम करते है जिसे इन्होंने दुल्हन बनाया था, जिसके शौहर इजहार ने उसका मुंह भी नहीं देखा और जिसे लोगों ने संगसार (पत्थरों से ज़ख्मी) कर दिया। जब भी मैं जाता हूं, मुझे व्यंग्य का निशाना बनाते हैं कि मैं उनकी बेटी को न बचा सका। तब ही से मैंने भी इस पेशे को छोड़ दिया है। इससे तो पोल्टरी अच्छी, मछली पकड़ना भला, या फिर लोहार और बढ़ई का काम अच्छा कि आदमी सिर्फ अपनी मर्जी का पाबन्द है। मैं एक बढ़ई को जानता हूं जो एक डोई पर इतनी मेहनत करता है जितना कोई चित्रकार अपने चित्र पर करता है। अर्थात् अगर सही मायनी में कोई कुम्हार है तो वह उस वक्त तक चाक से बर्तन नहीं हटाता जब तक उसके दिल को सन्तोष न हो जाए। दर्जी एक एक टांका अपनी मर्जी से लेता है। फर्ज करो कि कोई ऐसा कानून निकले जिसमें कहा जाए कि कुम्हार सुराही बना सकते हैं। मगर उसकी गर्दन छः इंच से ज़्यादा नहीं रख सकते, या हांडी सिर्फ इस नाप की बनायी जा सकती है जो हम बताएं तो तुम ही कहो कि कोई सच्चा कुम्हार सारे बर्तन भांडे फोड़ कर जंगल में नहीं जाएगा। अगर किसी माली को पाबन्द कर दिया जाए कि तुम सिर्फ यह फूल यहां लगा सकते हो तो वह भी पाबन्दी बर्दाश्त नहीं करेगा।'

'दादा लोहार हो या बढ़ई या कुम्हार, सबको वही चीज़ बनानी पड़ती है जिसकी मांग हो, जो दुनियां चाहती हो। मिट्टी या काठ की गुड़िया ही बनाते रहे तो कौन खरीदेगा?'

'बाबा यह तो हुनर हुनर की बात है। तुम मेरी बात मानो न मानो' अगर आदमी के हाथ में सच्चा हुनर हो तो वह अपनी मर्जी की चीज बनाता है और बेचता है, नहीं तो दूसरो की मर्जी की। फनकार और कारीगर में यही तो फर्क है। एक बढ़ई और मोची भी आर्टिस्ट हो सकता है और एक आर्टिस्ट भी मोची या बढ़ई हो सकता है। जो अच्छी चीज, नई चीज खूने जिगर से बनाए वह आर्टिस्ट है और जो लोगों की और वक्त की मांग पूरी करे वह बढ़ई और मोची है, और जिस पेशे मे तुम जाना चाहते हो जब वह बढ़ई और मोची के पेशे से भी गुज़रा हुआ है तो उसमे जाना कोई गर्व की बात तो नही। अगर आर्टिस्ट नही बन सकते तो आर्टीजन ही बन जाओ। लाखों लोगो की पसन्द की चीज बनाओगे तब भी कुछ तो जहन को खुल खेलने का मौका मिलेगा। खिलौने ही बनाना शुरू कर दो। खिलौने बनाना, खिलौना बनने से तो बेहतर है।'

चुप फ़िज़ा में तेज खुशबू

लेखक—रशीद अमजद

अनु०—डॉ० फज़ले इमाम

रिकार्डिंग हाल की तेज रोशनी में सारी चीजें सरकती हुई दिखाई दे रही है। उसका अपना आप वजूद की तनगनायों[1] से निकल कर ऊपर उठने की कोशिश कर रहा है। सामने वाला कैमरा मैन ट्रोली को आगे पीछे करके जाविये[2] दुरुस्त करता है। दो नम्बर कैमरे में उसके साथ वाले को कवर करना है तीन नम्बर कैमरे में लम्बे शाट लेने हैं और टाइटल को कवर करके मैनेजर एक नम्बर कैमरे को मुन्तकिल कर देता है, प्रोड्यूसर बारी-बारी तीनों कैमरों के फोकस में उनकी तरतीब ठीक करने के लिये कुर्सियों को आगे पीछे सरकाता मेज को जरा टेढ़ा करता है। फिर कहता है, "आप समझ गये ना! जब एक नम्बर का कैमरामैन अंगुली से दायरा बनायेगा तो प्रोफेसर साहब गुफ्तगू शुरू करेंगे बिल्कुल नेचुरल तरीके से बग़ैर किसी तमहीद[3] के, टाइटल के! लगे शाट के फौरन बाद दो नम्बर कैमरा आपका क्लोज़ लेगा लेकिन आपने बराहरस्त[4] कैमरे की तरफ नहीं देखना। फिर बांयी तरफ वाली रोशनी को देख कर नफी[5] में सिर हिलाना है। इससे नम्बे के जाविये पर लाबे।

नीली वर्दी वाला रोशनी मैन लम्बी सी छड़ी की लाईट से आगे पीछे करके जाविया दुरुस्त करता है। प्रोड्यूसर एक नम्बर से उनकी तरतीब चैक करता है और उसकी तरफ मुँह करके कहता है, "प्रोफेसर साहब आपने कुर्सी के हत्थों को इतनी मजबूती से क्यों पकड़ रखा है।"

वह कैसे बताये कि अगर उसने हत्था छोड़ दिया तो उसका सारा जिस्म कुर्सी की गिरफ्त से निकल कर फ़िज़ा में तैरने लगेगा। लेकिन कुछ कहे बग़ैर गिरफ्त ढीली कर देता है और पांव पर बोझ डाल कर ज़मीन को पकड़ने की कोशिश करता है।

प्रोड्यूसर इत्मीनान से चारों तरफ देखता है और कहता है—कंट्रोल रूम में जाकर एक कैमरामैन अंगुली से दायरा बनाये तो प्रोफेसर साहब जनाब आप! वो सर हिलाता है। प्रोड्यूसर कन्ट्रोल रूम में चला जाता है—एक मिनट, दो मिनट, फिर तीन आवाजें एक साथ गूँजती हैं।

---

1. सीमाओं 2. कोण 3. भूमिका
4. सीधे 5. इंकार

रिकार्डिंग हाल में से जिन्दगी रेंग-रेंग कर बाहर निकल जाती है और मौत दबे पांव दाखिल होती है।

गहरी गुपत खामोशी।

वो थूक से गला तर करता है।

लम्हा-लम्हा गुजरता है—टीक टीक टीक।

एक हाथ आहिस्ता-आहिस्ता बुलन्द होता है। अंगुली उठती है। दायरा बनने लगता है वो बोलने के लिये मुंह खोलता है।

लेकिन.......आवाज नहीं निकलती।

पसीने की लहर सारे जिस्म को अपने अन्दर लपेट लेती है।

वह मुंह खोलता है—जुमला[1] याद करने की कोशिश करता है। क्या उम्दा जुमला सोचा हुआ था मगर एक लफ्ज़ याद नहीं आता। मुंह से आवाज ही नहीं निकलती। तेज रोशनियां चारों तरफ से टूटे पड़ रही हैं।

लम्हा-लम्हा गुजर रहा है।

बोलने की कोशिश—आवाज नहीं—

गुफ्तगू उसे शुरू करना है [फिर साथ वाले से सवाल करके उसे शामिल करना और फिर तीसरे साथी से सवाल, लेकिन बात शुरू हो तब ना।

बोलने की एक और कोशिश।

थूक से गला तर करके टूटे हुए जुमलों को जोड़ने की कोशिश।

लेकिन आवाज नहीं।

किन-अंखियों से साथ वाले को देखता है, दोनों उसकी तरफ देख रहे हैं

लेकिन आवाज

सारा जोर लगा कर एक बेरब्त[2] सा जुमला बोलने की कोशिश।

लेकिन होंठ सरसरा कर रह जाते हैं।

प्रोड्यूसर अभी दौड़ता हुआ आवेगा—'यह क्या हो रहा है।'

बस आता ही होगा।

चीजें आती जाती रहती है। कायनात[3] का सिलसिला ही अजीब है; चीजें जन्म लेती हैं और फिर किसी माहौल में गुम हो जाती हैं, हर रोशनी के पीछे एक बलैक होल है, हर सांस ही एक बलैक होल है कि हर सांस के पीछे एक मौत की दस्तखत है छोटी छोटी दस्तकें हैं और फिर एक लम्बी ऊंची दस्तक बक्त ही एक बलैक होल है जो सिस आखिर हर शै[4] को अपने अन्दर समेट लेता है।

वो बोलने के लिये मुंह खोलता है लेकिन आवाज—लफ्ज़ गुम हो गये हैं।

---

1. वाक्य 2. बेजोड़
3. जग, दुनिया 4. चीज

बीवी कहती हैं—"प्रोग्राम का चैक ग्रोपन करवा लेना। दस बारह रुपये रह गये है ग्रौर ग्रभी तो चार-पांच दिन बाकी हैं।"

बेटी, मां के पहलू से सिर निकालती है—'ग्रब्बू बुढ़िया चाबी वाली, ग्रापने वादा किया था ना ग्रब प्रोग्राम मिलेगा तो....।'

बेटा तुतली ग्रावाज में कहता है—'ग्रब्बा, ग्रब्बा'

वो ग्रांखें झपकाता है।

रिकार्डिंग रूम में मौत की सी खामोशी है।

मौत तो एक खुशबू है जो धीरे-धीरे हर चीज पर नशा तारी कर देती है। ग्रौर इस नशे के ग्रालम मे हम चुपके से एक दायरे से निकल कर दूसरे दायरे में दाखिल हो जाते है ग्रौर ये ग्रजीब बात है कि जिस्म के सारे हिस्से फौरी तौर पर नही मरते। बाज[1] हिस्से मौत के कई दिन बाद तक जिन्दा रहते हैं, बाल ग्रौर नाखून कब्र में भी बढते रहते हैं। कहते हैं जहन के बाज हिस्से भी मौत के कई दिन बाद तक ग्रपना काम करते रहते हैं। यह भी ग्रजब है कि ग्रादमी मर चुका है लेकिन उसके जहन के कुछ हिस्से काम कर रहे हैं ग्रौर वो खुद ग्रपनी ग्राखिरी रसम देख रहा है। ग्रचानक या हादसाती मौत की शक्ल में बहुत से हवास ग्रौर कभी-कभी वजूद का मुरमायी जुम्ला हयूला[2] भी कई दिन तक मौजूद रहता है। लेकिन फिर एक चुप।

वो गहरी चुप

वो चुप के पजों से निकलने के लिये फड़फड़ाता है। बोलने की कोशिश करता है लेकिन ग्रावाज नहीं निकलती।

ग्रावाज के लिये क्या उम्दा जुमला सोचा हुग्रा था, वो जुम्ला क्या था? था तो कोई ग्रौर जुम्ला लेकिन लफ्ज़ तो उससे दूर भाग गये हैं।

बोलने की कोशिश—ग्रावाज़

पसीने के क़तरे सारे चेहरे पर हिमते जा रहे हैं।

कायनात भी एक जिस्म है जैसे यह हमारा। यह जिस्म जिसके ग्रन्दर कई दुनियायें ग्राबाद नरगेसीम से भरी हुई दुनिया ग्रौर हमारा जहान, इन सबको, पूरे जिस्म को कन्ट्रोल करता है। कायनात भी एक जिस्म है ग्रौर हम इसके ग्रन्दर छोटे-छोटे जरासीम[3] है। उसका भी एक जहान है एक मास्टर माइण्ड है।"

घन्टी की ग्रावाज के साथ ही लड़के कन्धे झटक कर उसकी बातों को वापिस उसके मुंह पर दे मारते हैं।

---

1. बुध 2. ग्राकार
3. प्राणी

स्टाफ रूम में एक साथी कहता है, 'यार जरा हिसाब करके तो बताओ नये स्कूलों से कितना फर्क पड़ेगा।'

'नये स्कूल'

'आज का अखबार नही देखा पे कमीशन की सिफरिशात।'

'तो क्या—दिल खुश करने में क्या नुकसान है ?'

प्रोड्यूसर कहता है—'प्रोफेसर साहब या आप शुरू करेंगे, ज्योंहि एक नम्बर अगुली से दायरा बनायें आप . .'

वो बोलने की मुसलसल कोशिश कर रहा है लेकिन आवाज नही निकलती मालूम नहीं आवाज गुम हो गई या लफ्ज खत्म हो चुके हैं।

आवाज़ एक परिन्दा है,
लफ्ज़ उसकी चहकार,
सोच हफ्त रंग फिजा

नही शायद""लफ्ज एक परिन्दा""आवाज चहकार सोच""नहीं-नहीं"" शायद यूं""सोच एक परिन्दा लफ्ज उसकी चहकार और आवाज""।

आवाज नही निकलती कोशिश के बावजूद नही निकलती।

भारी भरकम वाली खामोशी रिकार्डिंग हाल में टल रही है,

तेज रोशनियां—कैमरे को आगे पीछे ढोती बेआवाज ट्रालियां।

फिजा एक इन्तेहाई अहसास[1] मूवी कैमरे की तरह हर हरकत, हर आवाज को रिकार्ड कर रही है। फिजा में अजल से अबद[2] तक की हर हरकत हर आवाज महफूज़ है और अपने आपको दोहराती रहती है। क्या मालूम इस लम्हे कायनात के किसी हिस्से में उसकी तस्वीर भी रिकार्ड हो और अस्ल मन्जर और कहीं हो हजारों मील की दूरी सालों के फासले पर वो किसी जगह इस लम्हे या इससे हजारों साल पहले मौजूद हो और यही बोलने की कोशिश में बार-बार मुंह खुल रहा हो और आवाज नही निकलती हो—लफ्ज बेवफा हो गये हो।

वक्त के साथ सब कुछ बेवफा हो जाता है—उमर भी, दिल भी, यादें भी, बस सब कुछ पास से गुजर जाता है—और आदमी हाथ बढा बढा कर ही रह जाता है—लेकिन प्रोग्राम के बाद कुछ चैक जरूर ओपेन करता है किसी के सामने वही बस किसी बहाने कुछ देर के लिये रुक जाता है और जब दूसरे दोनों चले जायें तो""लेकिन प्रोग्राम रिकार्ड हो तब ना""प्रोड्यूसर तो अभी कन्ट्रोल रूम से चीखने ही वाला है—"ये क्या हो रहा है आप बोलते क्यों नही।"

वो फिर बोलने के लिये कुछ कहने के लिये मुँह खोलता है।

पहली में अभी चार दिन बाकी है, बल्कि पांच दिन, तनख्वाह तो दो को ही मिलेगी ना और चैक ओपेन—लेकिन बोलने की हर कोशिश बेकार।

आवाज़ साथ छोड गयी है—बेवफा हो गयी है।

---

1. अनुभव 2. शुरू से आखिर तक

क्या कहें—कैसे कहें ।

कितने उम्दा उम्दा जुमले सोच कर आया था ।

अभी गुफ्तगू शुरू करना है और इख्तेताम[1] भी—

प्रोड्यूसर ने कहा था—"जब आखिरी दो मिनट रह जायेगा तो नम्बर एक दो बार अगुली से दायरा बनायेगा, बस आप नेचुरल तरीके से उबस लें और पांच, छ इख्तेतामिआ जुमले कह कर बात खत्म कर दें ।"

लेकिन अभी तो इब्तेदाई[2] जुमले भी नही कहे गये, इख्तेताम कब और कैसे होगा वो हर बात करने की कोशिश करता है ।

मुसलसल बोलने की कोशिश में होंठ फड़फड़ाने लगे हैं, एक आखिरी कोशिश के तौर पर। वजूद का सारे जोर लगा कर सारे तवानाइयां[3] इकट्ठी करके बोलने के लिये मुंह खोलता है —लेकिन आवाज नही निकलती, होंठों के सरसराहट के साथ उसका वजूद सुकड़ने लगता है रिकार्डिंग हाल छोटे से ब्लेक होल की तरह अपने अन्दर गुम कर रहा है—उसे तेजी से अपने अन्दर समेट रहा है, वो हाथ पैर मारता है खुद को इस कोशिश से बचाने की कोशिश करता है लेकिन बेसूद[4] फिलहाल उसे तेजी से अपनी तरफ खींचे चला जाता है एक घनी तारीकी तेजी से उसके करीब आती जाती है तेज रोशनियां—पलक झपकने से बुझ जाती है और रिकार्डिंग हाल मुख्तलिफ आवाजों से गूंजने लगता है। प्रोड्यूसर भागता हुआ अन्दर जाता है और कहता है—'वाह वाह, कमाल हो गया, बहुत अच्छी रिकार्डिंग हुई है।' यह प्रोग्राम तो हिट हो जायेगा।'

और वो बड-बड उसका मुंह देखे जाता है ।

---

1. अन्त 2. शुरू

3. ताकत 4. बेकार, निरर्थक

एक मुख्तसर किताब

लेखक— सईद अन्जुम
अनु०—डॉ० फज़ले इमाम

इन्तसाब[1]—उस लिखारी के नाम जो इस तलखीस[2] के मवाद[3] को तहरीरी शक्ल दे सके।

तम्हीद[4]—लाहौर में सूरज हस्बे मामूल[5] निकला और मैं हर रोज की तरह पुरानी अनारकली पहुंचा और एक कुल्चा खाया और लस्सी पी। फिर माल रोड से मोमनी बस पर सवार हो गया। मैं छत का डंडा पकड़े खड़ा था कि वह हुआ जो मालूम के मुताबिक न था। बस के अगले दरवाजे से एक परी दाखिल हुई। उसके पर नहीं थे। वह उड़ने के बजाय बस का डन्डा पकड़ कर खड़ी हो गई। मेरे तमाम हवास उसे परी करार दे रहे थे और मुझे अपने बाहवास होने का पूरा अहसास था। एक जगह बस रुकी तो परी चली गई। उस लम्हे मुझे मालूम हुआ कि नींद की कैफियत में जो नजर आता है वह हम जागते हुए भी देख सकते हैं। सोते में देखे ख्वाबों को जागती कैफियत में तलाश करना इस किताब का मुहर्रिक[6] है।

फसले अव्वल (प्रथम अध्याय)—मैं सोता था कि जागता, मुझे याद नहीं। मेरे अब्बा की आवाज थी या मेरे किसी हम उम्र के बाप की, मुझे सही मालूम नहीं लेकिन उसने जो कहा वो यूं था—मेरी चिट्टी दाढ़ी का ख्याल करो। मेरे मेरे बूढ़े जुस्से[7] को देखो, अपने हाथ पैर इस्तेमाल करो अढाये अपना मगज बरतू मेरा बड़ा दिल करता है कि इस कमरे के सामने बरामदा हो, छत पर एक पंखा चले; शीशे के जग गिलास हों, ठंडे सोडे और मीठे सूप का दौर चले, तुम मोटर साइकिल पर चढ कर जाओ और एयरकंडीशन दफ्तर में बैठो। अरे तुम्हारे दिल में कुछ करने को जी नहीं चाहता, रग-पट्ठे नहीं फड़कते, खून जोश नहीं मारता, कुछ करके दिखाने को जी नहीं चाहता। कोई फुर्ती, कोई गजवज। कभी कभी तो मुझे

---

1. समर्पण 2. संक्षिप्त 3. विषय-वस्तु
4. भूमिका 5. सदा की भांति 6. प्रेरक
7. शरीर

लगता है कि तुम जवान होने से पहले बूढ़े हो गये हो, तुम्हारी रीढ़ की हड्डी बोल गई है, तुम्हारी आखें पीली जर्द हो गई है। तुम्हे यरकान[1] हो गया है, बोलने से तुम यूं डरते हो जैसे लकवा मार गया हो। तुमने मुझे दूध सोडा नही पिलाना। मैं ही कही से कबूतर की यखनी[2] ढूंढ कर लाऊंगा।

फसले दूम (द्वितीय अध्याय)—मेरा ख्वाब एक कहानी की सूरत था। यह कहानी मैने खुद पढी थी या किसी ने मुझे सुनायी थी कुछ याद नही। लेकिन इस कहानी की कैफियत बहुत ख्वाबनाक थी जो बाद मे मेरी नीद का हिस्सा भी बन गई। कहानी का नाम था "इलाहद्दीन का चिराग"। अनगिनत चीजें थी जिनके नाम और काम से मैं वाकिफ था। लेकिन वह मेरी पहुंच से बाहर थी। कहानी ने इनके हुसल का तरीका मुझे बता दिया था। चिराग रगड़ो तो जिन हाजिर। आगे बस हुक्म देना था। चुनाचे मैं चिराग को रगडता और जिन को हुक्म देता और ख्वाहिश पूरी हो जाती। जरूरत तिश्ना[3] रह जाती—आंख खुल जाती नीद मे रगडे चिराग को जागती कैफियत मे तलाश करता। मेरी मजिल करार पायी, चिराग कहा था। चिराग। चिराग। चिराग।

फसले सुम(तृतीय अध्याय)—ब्लेक आऊट। भारी बूटों की धमक। रजाकारों की सीटियां। बन्द करो। बत्ती बन्द करो।

रोशनी। रोशनी। उधर। उधर।

जासूस। वतन दुश्मन। गद्दार।
सायरन की आवाज
पाक परवर दिगार रहम कर
अम्मी मुझे कुछ नजर नही आता
चुप। बमबारी होने वाली है।
अब्बू मैं क्या करूं।
कूद जाओ, छलांग लगा दो। खन्दक में घुस जाओ।
मेरा दम घुट रहा है
मुझे बू आ रही है।
मुझे भूख लग रही है।
रोशनी कब होगी ?

---

1. पीलिया
2. तली हुई बोटी
3. प्यासी

तोबा-अस्तग़फ़ार करो। सायरन बज चुका है।

ये सायरन कौन बजाता है ?

परे हट कमीने। तेरी माँ बहन नही है ?

या अल्लाह ख़ैर—इहदीनेस सीरातल मुसतक़ीम (ख़ुदा सीधे राह पर कायम रख)

मेरी चादर-मेरी चादर

कौन है ? कौन है ये ? ? बोलता क्यों नहीं

कुछ नज़र नही आता

दियासलाई जला कर देखो

अहेतियात के साथ। ब्लैक आउट है

हां हा, मगर इसे भी तो देखो कौन है ?

भारी बूटों की धमक। रज़ाकारों की सीटियां

बन्द करो-बत्ती बन्द करो।

वतन। दुश्मन। गद्दार। ऐजेन्ट।

फसले चौहरम (चौथा अध्याय)—जहां चिराग था वहां हज़ारों लाखों करोड़ों इन्सान जमा थे। सबने इलाहुद्दीन की कहानी पढ़ या सुन रखी थी। इनकी जरूरत की चीजें उनके सामने थी लेकिन उनकी पहुंच से बाहर थी। वो ख्वाब देखते और तशिनगी लिये जाग उठते। तब तक दूसरी कहानी मेरी जिन्दगी में आई। मुझे याद नही मैने खुद पढ़ी थी या किसी ने मुझे सुनायी थी। कहानी का नाम था 'सुलैमानी टोपी'। सर ढापो और सब की नजरो से गायब। खुद सब कुछ देखो मगर कोई दूसरा तुम्हे न देख सके। गौहरे[1] मुराद पाने का सबसे आसान तरीका यही था। अगर जरूरत की अशिया[2] चौकस पहरेदारो की तेज नज़रो की जद में भी हो क्या परवाह। 'सुलैमानी टोपी' पहनो और मनमरजी की शै उठा कर चल दो किसी को कानो कान खबर न हो। मेरे ख्वाब में इलाहुद्दीन के चिराग को उठाना भी शामिल था। अब जामती कैफियत में 'सुलैमानी टोपी' का सुराग लगाना मेरी मंजिल ठहरी।

फसले पंजुम (पांचवा अध्याय)—सड़क के किनारे एक दरख्त था जिसके पीछे एक अलिफ नगा शख्स बैठा बड़बड़ाता रहता। कुछ लोग उसे पागल समझते और बाकी पहुंचा हुआ बुजुर्ग। गौस की बातें और मुसतक बिल की सूरत हाल सब कुछ

---

1. तमन्नाओं के मोती, आशाओं के मोती 2. चीजें

उसकी पहुंच में था। लोग सवाल करते और मुराद पाते। बेमुराद लौटने वाले उसे पागल कहने वालों में शामिल हो जाते। मैं भी वहा पहुचा। अलिफ नंगा शक्स जोर से हसा। लोग डर गये। वह इतना हसा कि उसके नगे बदन के सब बाल खडे हो गये। फिर वह खुद खडा हो गया। लोगो की सफे टूटने लगी। बच्चे चीखने लगे, औरतो ने तोबा असतगफार शुरू कर दी। लोग गिडगिडाये-'साईजी' वह हंसता चला गया। फिर उसने करीब रखे कटोरे को उठा लिया जिसम पानी भरा था। उसने पानी मेरे सर पर उडेल दिया और गरजदार आवाज म चिल्लाया 'जागो जागो'। मैं तो सोते म देखे ख्वावों को जागती कैफियत मे तलाश कर रहा था। वह पहुंचा हुआ बुजुर्ग था या जनूनी दीवाना। कि महज वहम्-पर्या। उसने मेरे ख्वाबो को मेरे लिये मशकूक बना दिया। जाने मैंने अपने ख्वाब मे सोते मे देखे थे या जागते में। ये खोज मेरी राह तक रही थी।

फसले शशुमे (छठा अध्याय)—मैं सोकर उठा तो पुरानी अनारकली पहुंचा। एक कुलचा खाया फिर लस्सी पी। माल रोड से ओमनी बस ली कि एक मौलाना साथ आन बैठे। कांधो पर रुमाल, आंखों मे सुरमा, मुंह मे पान और चेहरे पर नूरानी डाढी, सिर पर मुकल्लफ पगड़ी, खस की खुशबू मे पूरी-तरह बसी हुई।

'क्या करते हो मियां ?' उन्होने पूछा।
'ख्वाव देखता हूं'
'सोते मे या जागते में'
'यही तो मालूम नही'
'ओह ओह ओह ओह, तुम दम[1] कराओ'।
'साई अलिफ नगे से।'
:साई अलिफ नगे?
'लाहौलवला कूवत—किसी मर्दे खुदा से। नेमाज पढ़ते हो।'
'जी नही'
'गिरफ्तार हो जाओगे। नमाज पढ़ा करो। सब मुरादें पूरी हो जायेंगी'
'सुलैमानी टोपी मेरी मुराद है।'
'मिल जायेगी—वजीफा करो।'

---

1. दुआ कराना, फूंकना, झाड़ना।

'किसी रोज मस्जिद में आ जाओ, बता दूंगा।'

मौलाना ने पता दिया।

फसले हफ्तुम (सातवां अध्याय)—मस्जिद से निकला तो एक औरत ने रोक लिया और बोली तुम्हें क्या हो गया फतूर। चगा भला तुम्हारा मुंह है। और सोहनी निखरी तुम्हारी जवानी। उस मौलवी के चक्कर में क्यों पड़ गये हो? मुझ बदनसीब को देखो और उस हराम के तख्म[1] से बचो। मेरे घर वालों को इलाहदीन के चिराग का चस्का था। और उस मौलवी ने वजीफा बताया और उसमें वजीफा पूरा कर लिया। चिराग पर दम पढ़ पढ़ा लिया। पर जिन को नहीं आना था नहीं आया। उस कंजर ने उसे बताया जिन अल्लाह की मर्जी से आयेगा और अल्लाह कुर्बानी से खुश होता है। किसी प्यारी चीज की कुर्बानी दे कि अल्लाह को प्यार आए। उस कंजर ने अपने पुत्र की छुरी फेर दी। उसके गोश्त का पुलाव पका कर पूरे मुहल्ले को खिला दिया। उसी मौलवी ने खत्म पढाया था। तुम्हारी चढ़ती जवानी को किस वजीफे की तोड़ है? मुझे देखो! पुत्र का पुलाव पक गया और घर वाला जेल में बैठा है। तुम क्या चाहते हो, कहीं तुम इलाहदीन तो नहीं हो? तुम्हारा मुंह, मथा तो जिनों वाला नहीं है। साईं अलिफ नंगे कोल जाओ। तुम्हारी सारी मुश्किलें दूर हो जायेंगी। वह आपे पल के यार मलाल देगा जो साबाश अल्लाह तेरा भला करे।'

फसले हश्तुम (आठवां अध्याय)—दरवान ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा। मैंने टेलीफोन पर होने वाली गुफ्तगू का हवाला दिया और उसे घड़ी दिखाई। उसने मेरा नाम लिया। मैंने सिर हिलाया। उसने दरवाजा खोल दिया। खनक[2] फिजा, नीम तारीक, नीम रोशन कमरा-कोने में एक कोस[3] नुमा मेज, जिसके पीछे एक खुशनुमा चेहरा, मुस्कुराहट मेरे नाम की गुनगुनाहट, आराम देह सोफा इन्टर-काम पर रावता, आटोमेटिक दरवाजे के रास्ते कालीनों पर फिसलता एक कुशादा कमरे की तवील[4] मेज के सामने पहुंचता है। और दरवाजा बन्द हो जाता है। एक कोख में धंस जाने का अहसास होता है। सुई से लेकर लोहे के गार्डर तक की इम्पोरट की गुफ्तगू टेलीफोन पर खत्म होती है। एक दूसरे रंग के टेलीफोन पर बत्ती जलती है। साहब इन्टरकाम पर फोन। अन्दर न भेजने की हिदायत करता है। कुर्सी घूमती है। थ्री-पीस सूट के ऊपर जड़ा हुआ चेहरा मेरी आंखों में देखता है।

---

1. बीज
3. धनुष नुमा

और कैसेट प्लेयर की आवाज सुनाई देती है। 'सुलैमानी टोपी' और 'इलाहदीन का चिराग' दर असल एक ही कूवत के दो नाम है। दो कूवत हम समन्दर पार से मंगवाते है। और तलबदारो मे तमसीम करते है। इस कूवत का कुछ मुआवजा है। आप के पास अदा करने के लिए क्या है? अपनी हर किस्म की प्रोपर्टी के कवाईफ तो आप लाये ही होंगे? दिखाइये तो जरा?"

फसले नहुम (नवां अध्याय)—उनके सिर पर सुलैमानी टोपी नही है, वो सबको देख सकते है। लेकिन कोई दूसरा उनको देखने की हिम्मत नही करता। वह वर्दी पहन कर मनमर्जी शै 'चीज' उठा लेते हैं और कोई चूं नही करता। उनके पास इलाहदीन का चिराग नही है लेकिन वह हुक्म देते हैं तो एक जिन के बजाय पूरी पलटन मुतहर्रिक[1] हो जाती है। इस शहर को तो बेतुल-आफियत[2] होना था। यह तो सोता जागता शहर बन गया। यह मालूम भी नहीं होता है कि सोता कहां है, जागता कहां है। सोने वालों के दरमियान लोग जागते है और जागते इन्सानो के बीच लोग सोते है। आफियत कहा है। जहां सच्चाई है। सच्चाई कहां है? घर में तो नही, कही बाहर है। किसी बरगद के पेड़ तले, किसी गार की खोह मे, सच्चाई की तलाश मे गारे हिरा का सफर किया गया। बरगद तले गौतम को निर्वाण मिला। सच्चाई कही बाहर। सफर, सफर, सफर। हरकत, हरकत, हरकत, पासपोर्ट-वीजा, टिकट, सुलैमानी टोपी और इलाहदीन का चिराग। एक ही कूवत के दो नाम है। समन्दर पार से मंगवाते हैं। साडे अपने बिलो से झांकते थे और छिपकलियां, मगरमच्छों की सूरत डराती थी। समन्दर पार से दो नामों वाली एक कूवत आयी। इक्के के बूटे और कोकर के दरख्त, सब्ज घास के वसीकतों में बदल गये रास्तों पर सुरख बजरी बिछ गयी। किनारों पर चूने की सफेद लकीरें लगीं, पाम के गमले सज गये, गुलाब मोतिये और रात की रानी की खुशबू फैल गयी। तितलियां, जुगनूं बारिश के बाद की ताजा हवा, बीर बहूटियां, मख-मल के सुर्ख रंग हाथ पैर लूं। कौन है। जंगली जानवर। पकड़ो पकड़ो इक्के के बूटे, कोकर के दरख्त, छिपकलिया, मगरमच्छ की सूरत मुंह खोले लेटी है। आवाज कही करीब से आ रही है। मेरी चिट्टी डाढ़ी का ख्याल करो। मेरे बूढ़े जुस्से को देखो।

फसले दहुम (दसवां अध्याय)—अल्लाह अल्लाह, सरजमान हिजाज, सुहसन, तेरी कुदरत, जरूर जाओ, बच्चा तेल के चश्मे वहां से फूटे जहां पानी मिलना भी मुश्किल हुआ करता था। ये फजले खुदा बन्दी और शाने रबूबियत[3] है। एक दर बन्द होता है तो सौ दर खुलते है। तुम नौकरी की तलाश मे फिरे और नाकाम रहे। अब अल्लाह की शान देखो। ये सऊदी अरब का

---

1. गतिशील 2. शान्ति का घर 3. खुद को शान

बीजा । मेहनत करो और खूब कमाओ । उमा और हज इजाफी नयमते मुकद्दस। खजूरें खाओ तो गुठलियां जमा करते रहो। अल्लाह बहशी तुम्हारी नानी कहती थी कि घर मे बरकत रहती है। पाच गुठलिया तो अब भी एक शीशी में मौजूद हैं। अब तो हम थोड़ा सा खाते जम जम भी घर मे रख सकेंगे। जाओ, जाओ, बच्चो जरुर जाओ। सर जमीने हिजाब मे रोजी कमाने का मौका मिले तो समझो, दोनो जहान की नम्मतें इस ही दुनिया मे मिल गयी। इस खींजे को चूम कर आंखों से लगाओ और हां सुनो मेरे लिये दो गज कपड़ा भी लेते आना कफन बगैर कस्टम के लाने की इजाजत है।

इख्तातामिया (उपसंहार)—पहली छुट्टी पर वापस वतन पहुँचा तो ट्रेवलर चैक भुनाने घर मे निकला। पुरानी अनार कली के चौक मे रुक गया। एक कुलचा खाया और लस्सी पी फिर माल रोड की तरफ चल पड़ा कि अमेरिकन एक्सप्रेस से कैश लेना था। मैं अन्दर दाखिल हुआ तो वो देखा जिसकी उम्मीद ना थी। अमेरिकन एक्सप्रेस के काउन्टर के पीछे वह परी बैठी थी। वो ही जिसके पर नहीं थे जो उड़ने के बजाय बस का डंडा पकड कर खड़ी थी और मुझे अपने बाहवास होने का पूरा अहसास था।

परीजी। जाने मेरी आवाज निकली कि नहीं निकली।

'फरमाइये ?' वह बोली। वह सचमुच मुझ से मुखातिब थी।

'आप कब से यहा पर है ?'

'सालों से'। 'आपके पास कितने डालर है ?'

'सालों से। क्यों ? जाने मैंने कहा था या नहीं कहा।"

'मेरे ख्वाबो का शहजादा सऊदी अरब मे है' जाने उसने कहा या नहीं कहा।

हवेली

लेखक—मुश्ताक अहमद युसुफी
अनु० —डॉ० फज़्ले इमाम

कानपुर से हिजरत करके आये तो दुनियां ही और थी। बेरोजगारी और बेघरी। इस पर मुस्ताजाद अपनी हवेली के पांच-छ. फोटो खिंचवा लाये थे। 'जरा यह साइड पोज देखिये और यह गाट तो कमाल का है'। हर आये गये को यह फोटो दिखा कर कहते, 'यह छोड कर आये हैं' जिन दफ्तरों में मकान की अलाटमेंट की दरख्वास्तें दी थी उनके बड़े अफसरों को भी कटहरे के इस पार से सुबूत इस्तेहकाक[2] दिखाते 'यह छोड़ कर आये है'। बासकेट और शेरवानी की जेब मे कुछ हो या ना हो, हवेली का फोटो जरूर होता था। कराची के फ्लैटो को कभी माचिस की डिबिया, कभी डरबे और कभी काबक कहते, लेकिन तीन महीने जूतिया चटकाने के बावजूद एक काबक मे भी सर छुपाने को जगह ना मिली तो आंखें खुल गई। अहबाब[3] ने समझाया 'फ्लैट एक घंटे मे मिल सकता है, कस्टोडियन की हथेली पर पैसा रखो और जिस फ्लैट की चाहो चाबी ले लो।' मगर किबला तो अपनी हथेली पर पैसा रखवाने के आदी थे वह कहा मानते। महीनो प्लाट अलाट करवाने के सिलसिले मे भूखे-प्यासे परेशान हाल सरकारी दफ्तरो के चक्कर काटते रहे। जिन्दगी भर किसी के मेहमान ना रहे थे। बेटी-दामाद के यहा रहने का अजाब भी सहा। आदमी जब किसी घुला देने वाले कर्ब या आजमाइश से गुजरता है तो एक एक साअत एक बरस बन जाती है और यूं लगता है कि जैसे—हर बरस के हों दिन पचास हजार.......

सुबह सर झुकाये नाश्ता करके निकलते रात को खाने के वक्त कह देते कि ईरानी होटल मे खा आया हू। शेरवानिया अब ढीली हो गयीं, पैरों मे ठेठ पड़ गये। बीमार बीवी रात को दर्द से कराह भी नही सकती थी कि समधियानेवालो की नींद खराब होगी। मलमल के कुर्तों की लखनवी कढाई मैल मे छुप गयी। चुन्नटे निकलने के बाद कुर्ते की आस्तीनें अगुलियो से एक एक अगुली आगे निकली रहती थी। चार चार दिन नहाने को पानी नहीं मिलता। मोतिया का इत्र लगाये तीन महीने हो गये।

हर दुःख हर अजाब के बाद जिन्दगी आदमी पर अपना कोई राज[4] खोल देती है। बोध-गया की छांव तले बुद्ध भी एक दुःख भरी तपस्या से गुजरे थे। जब

---

1. विस्थापित
2. अधिकार का प्रमाण
3. दोस्तों
4. रहस्य

पेट पीठ से लग गया। आँखें अन्धे कुओं की तह में बेनूर[1] हो गयीं और हड्डियों की माला में बस सांस की डोरी अटकी रह गयी तो गौतम बुद्ध पर भी एक भेद खुला था। जैसा और जितना दुःख आदमी भोगता है वैसा ही भेद उस पर खुलता है। दुनियां की खातिर कष्ट उठाता है तो दुनियां उसको रास्ता देती चली जाती है।

सौ गली गली खाक फांकने दफ्तर दफ्तर धक्के खाने के बाद किबला के कुल्ब पर कुछ हल्का हुआ तो यह कि कायदे कानून नेकनियत लोगों ने कमजोर दिल वालों की रहनुमाई के लिये बनायें। जो शख्स हाथी की लगाम ही तलाश करता है वह कभी उस पर चढ़ नहीं सकता। मुख्तसर यह कि जो बढ़ कर ताला तोड़ ले मकान उसी का है। कानपुर से चले तो अपनी जमा जत्था, शिजरा,[2] स्प्रिंग से खुलने वाला चाकू, अख्तरी-बाई फ़ैज़ाबादी के तीन रिकार्ड, कबूतरों की छतरी, सुराही के सब्ज कैरियर स्टैन्ड के अलावा अपनी दुकान का ताला भी ढो कर लाये थे। अलीगढ़ से खास मोर बनवा कर मंगवाया था। तीन सेर से कम का ना होगा। मजकूरा बाला इलका के बाद बिजनेस रोड पर एक आला दर्जे का फ्लैट अपने लिये पसन्द फरमाया। मार्बल टाइल्स समुन्द्री हवा के रुख खुलने वाली खिड़कियां, उसके ज़ंग आलूद[3] ताले पर अपने अलीगढ़ ताले की एक ही चोट से फ्लैट में अपनी आबादकारी बिला गिनने सरकार कर ली और अपने नाम की एक बहुत बड़ी तख्ती दुबारा पेन्ट करवा कर लगा दी। पहले उस पर 'कस्टोडियन मतरूका-इमलाक' का नाम लिखा हुआ था और किबलाए आलम जलाल में उसे वहीं से कीलों समेत उखाड़ लाये थे। तख्ती पर नाम के आगे मुजतर कानपुरी भी लिखवा दिया। पुराने वाकिफकारों ने पूछा 'आप शायर कब से हो गये ?' फरमाया 'मैंने आज तक किसी शायर पर दीवानी मुकद्दमा चलते नहीं देखा ना कुर्की होते देखी।'

फ्लैट पर काबिज होने के कोई चार माह बाद किबला अपने चूड़ीदार पाजामा का घुटना रफू कर रहे थे कि किसी ने बड़े गुस्ताखाना अन्दाज में दरवाजा खटखटाया। मतलब यह कि नाम की तख्ती खटपटायी। जैसे ही उन्होंने हड़बड़ाकर दरवाजा खोला उसने खुद का तार्रुफ इस तरह करवाया गोया अपने ओहदे की अपडास उनके चेहरे पर उठाकर दे मारी—'अफसर महकमाये कस्टोडीयन यूवेकीवी प्रोपर्टी'। उसने डपट कर कहा 'बड़े मियां फ्लैट का अलाटमेन्ट दिखाओ'। किबला ने वास्कीट की जेब से हवेली का फोटो निकाल कर जवाब दिया 'यह छोड़ कर आये है।' उसने फोटो का नोटिस ना लेते हुये कड़े दुरुस्ती से कहा 'बड़े मियां सुना नहीं ? अलाटमेन्ट आर्डर दिखाओ।' किबला ने बड़ी असान से अपना सलीम-

---

1. अन्धी
2. वंशावली पत्रिका
3. ऊपरी हिस्सा
4. मोर्चा लगा हुआ

शाही जूता उतारा और उतनी ही रसान से कि उसको गुमान तक ना हुआ कि क्या करने वाले हैं उसके मुंह पर मारते गये बोले 'यह है। यारो का अलाटमेंट आर्डर। कारवंनकापी भी मुलहाजा[1]फरमाइयेगा। उसने अब तक यानी तादमे-तजलील[2] रिश्वत ही रिश्वत खायी थी। जूते नही खाये थे। फिर कभी इधर का रुख नही किया।

बड़े जतन से मार्केट मे एक छोटी सी लकड़ी की दुकान का डोल डाला। बीवी के दहेज के जेवर तक औने पौने बेच दिये। कुछ माल उधार खरीदा, अभी दुकान ठीक से जमी भी न थी कि एक इनकम टैक्स इन्सपेक्टर आ निकला। खाते, रोकड़-बही और रसीद-बुक तलब की, दूसरे दिन बिबला हमसे कहने लगे—मुश्ताक मियां सुना आपने। महीनों जूतियां चटकाता दफ्तरों में अपनी औकात खराब करवाता था फिर किसी ने पलट कर ना पूछा। दिल्लगी देखिये कल एक इनकम टैक्स का तीसमारखां आया। लुक्का कबूतर की तरह सीना फुलाये। मैंने साले को यह दिखा दी। यह है हमारी रोकड़ बही, यह छोड़कर आया धन्दा, कर पूछने लगा यह क्या है? हमने कहा हमारे यहां इसे महलसराह कहते है।

सच-झूठ का हाल मिर्जा जाने कि उन्ही से रिवायत है कि इस महलसराय का एक बड़ा फोटो फ्रेम करवा कर अपने फ्लैट की कागजी सी दीवार में कील ठोंक रहे थे कि दीवार के उस पार वाले पड़ौसी ने आकर दरख्वास्त की कि जरा कील एक फुट ऊपर ठोंकें ताकि दूसरे सिर पर मैं अपनी शेरवानी लटका सकूं। दरवाजा खोलने और बन्द करने के झोंकों से इस जंग पायी कील पर सारी महल सराय पेन्डुलम की तरह झूलती रहती थी। घर में डाकिया या नया मेहतर भी आता तो उसे भी दिखता 'यह छोड़ आये हैं'।

इस हवेली का फोटो हमने भी बारहा देखा। इसे देखकर ऐसा लगता था कि कैमरे को मोटा नजर आने लगा है। लेकिन कैमरे के जोफे-बसारत को किबला अपना जोरे-ब्यान से दूर कर देते थे। यूं भी माजी[3] हर शह के गिर्द एक रोमानी हाला खीच देता है। गुजरा हुआ दौर भी सुहाना लगता है। आदमी जब सब कुछ छिन जाय तो वह या तो मस्त मलंग हो जाता है या किसी खोह मे पनाह लेता है।

'अगर ना हो यह फरेबे पैहम तो दम निकल जाय आदमी का।'

शजरा और हवेली भी एक ऐसी पनाहगाह थी, मुमकिन है तस्वीर में यह बेग्रदब निगाहों को ढंडार दिखलायी दे। लेकिन जब किबला इसकी तामीराती नजाकतों की तशरीह फरमाते तो इसके सामने ताजमहल बिल्कुल सीधा सपाट घरौंदा मालूम होता था। मसलन दूसरी मंजिल पर एक दरवाजा नजर आता था

1. देखना
2. जब तक अपमानित नही हुए
3. पिछले ज़माने मे

जिसकी चौखट और किवाड़ झड़ चुके थे। किबला उसे फ्रांसीसी दरीचा बताते थे। अगर यहां कोई विलायती दरीचा था तो यकीनन यह वही दरीचा होगा जिसमें लगे हुये आइना जहांनुमा को तोड़ कर सारी ईस्ट इंडिया कम्पनी दनदनाती गुजर गयी। ड्योढ़ी में दाखिल होने का जो बेकिवाड़ फाटक था वह दर असल शाहजहानी मेहराब थी। इसके ऊपर एक टूटा हुआ छज्जा था। जिस पर सरेदस्त एक चील चहुलें कर रही थी। यह राजपूती झरोखे के बाकीयात बनाये जाते थे जिसके अकर में उनके दादा के वक्तों की ईरानी कालीनों पर आजरबाईजानी तर्ज की कव्वाली होती थी। फर्श और दीवारें कालीनों से ढकी रहती थी। फरमाते थे कि 'जितने फूल गलीचे पर थे उतने ही बाहर बगीचे में थे।' यहां अतालवी मखमल के गावतकिये पर जेरे अन्दाज पर गंगा-जमुनी मुनक्कश उगालदान रखे रहते थे जिनमें चांदी के वर्क में लिपटी हुई गिलोरियों की पीक जब थूकी जाती थी तो बिल्लौरी गली में उतरती चढ़ती साफ नजर आती थी जैसे थर्मामीटर में पारा। हवेली के चन्द अन्दरुनी क्लोजअप भी थे कुछ कैमरे की आख चश्मे तसव्वुर के रहीने मिन्नत एक सेहदरी थी जिसकी दो मेहराबों की दराड़ों में बाजनतौनी ईंटों पर कानपुरी चिड़ियों के घोंसले नजर आते थे। उन पर की तोहमत थी उनमें पहलू पर में एक धोबी घड़ोंची फोटो में नजर आती थी जिसको शाहजहानी तर्ज का नमूना बताते थे। शाहजहानी हो या ना हो इसके मुगल होने में कोई शुबहा न था इसलिये कि इसका एक पांव तैमूरी था। हवेली की गुलाम गर्दीशे फोटो में नजर नहीं आती थी लेकिन एक हमसाये का बयान है कि इनमें गर्दीशे के मारे खानदानी बड़े बूढ़े रुले फिरते थे। हवेली के शिमाली हिस्से में एक सतून जो मुद्दतें हुयी छत का बोझ अपने ऊपर से उतार चुका था। उसका नादिर[1] नमूना बताया जाता था। हैरत होती थी कि यह छत पहले से क्यों ना गिरी। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि चारों तरफ गर्दन मलबे में दबे होने की वजह से चमगादड़ें भी नहीं लटक सकती थी किबला उन कड़ीयों की निशानदेही करते थे, जहां दादा के जमाने में अलमान्वी फानूस लटका करते थे जिनकी चमचमी रोशनी में यह घुंघराली खंजरियां बजती, जो कभी दो पीहान वाले बाहरी ऊंटों की मेहमल नशीनों के साथ आयी थी। अगर यह फोटो उनकी...... खाली जगह के साथ न देखे होते तो किसी तरह यह कयास जहन में नहीं आ सकता था कि तीन सौ मुरब्बा गज की एक लड़खड़ाती हवेली में इतने फनूने-तामीर और ढेर सारी तहजीबों का ऐसा इजदाहाम[2] होगा कि कबल धरने की जगह ना रहेगी। पहली मर्तबा फोटो देखे तो ख्याल होता था कि कैमरा हिल गया है। फिर जरा गौर से देखे तो हैरत होती थी कि यह ढंढार हवेली अब तक कैसे खड़ी है। मिर्जा का ख्याल था कि अब इसमें गिरने की भी ताकत नहीं रही।

1. अनोखा 2. भीड़

किबला कभी तरंग में आते तो अपने इकलौते बेतकल्लुफ़ दोस्त से फ़रमाते कि जवानी में मई या जून की ठीक दोपहरिया एक हसीन दोशीज़ा का कोठो कोठो नंगे पैर उनकी हवेली की तपती छत पर आना अब तकयाद है। यह बात अब तक हमारी समझ में न आयी। इसलिये कि उनकी हवेली सेहमंज़ीला थी। जबकि दांये बांये पड़ौस के दो दो मकान एक मंजिला थे। हसीन दोशीज़ा अगर नंगे पैर भी हो तब भी यह मुमकिन नजर नहीं आता। तावक्ते कि हसीना उनके इश्क में दोशीज़ा होने के अलावा दो तख्त भी न हो।

फोटो में हवेली के सामने एक छतनार पल्लखन थी। पल्लखन जिन पढ़ने वालो ने यह दरख्त नहीं देखा वो इसकी तस्वीर, कुरअतुल ऐन हैदर के कारेजहां-दराज़ है में मुलाहज़ा फरमा सकते है। हमने भी इस दरख्त का फोटो ही देखा है जिसका तख्म उनके मूदे आला समद सिया जानु पर सवार कारचौबी जोगें में छिपा कर कहत के जमाने में दमश्किक से लाये थे किबला के काल के मुताबिक उनके पर-दादा के अब्बा जान कहा करते थे 'वे सरोसामानी के आलम में वह नंगखलायक़ नंगेअसलाफ़' नगें-पतन बरहना सर नगें पैर घोड़े की नगी पीठ पर नंगी तलवार हाथ मे लिये हुए खैबर के संगलाख नंगें पहाड़ों को फलांगता वारिदे हिन्दुस्तान हुआ' जो तस्वीर वो हुलिया खीचते थे उससे तो यह जाहिर होता था कि इस वक्त बुजुर्गवार को पास सतरकपोशी के लिए घोड़े की दुमें के अलावा कुछ ना था जायदाद महल सराय[2] खुदाम मालोमतअ[1] सब कुछ वही छोड आये अलबत्ता असासासुल-बत[3] का सबसे कीमती हिस्सा यानी शजरानसब और पल्लखन का तुख्म साथ साथ ले आये घोडा तुख्म और शजरा के बोझ से रानो से निकला पड रहा था।

जिन्दगी की भूख जब कड़ी हुई तो आईन्दा नस्लों ने इसी शजर[2] और शजरे के साये तले बिसराम किया, किबला को अपने बुजुर्गो की जहनात व फ़तनात[4] पर बडा नाज था। उनका हर बुजुर्ग नादरे रोजगार था और उनके शजरे की हर शाख पर एक नाबिगा बैठा था।

किबला ने एक फोटो इस पल्लखन के नीचे ठीक उस जगह खड़े होकर खिचवाया था जहां उनका नाल गडा था। फरमाते थे कि अगर किसी शुख मे नाहहीक हो मेरी हवेली की मिल्कियत मे शुबा हो तो नाल निकाल कर देख लें। जब आदमी को ये न मालूम हो कि नाल कहा गडा है और पुरखों की हड्डिया कहा दफन है तो वो......... ...किस तरह हो जाता है। जो मिट्टी के बगैर बोतलों मे फलता फूलता है। अपनी नाल पुरखों और पल्लखन का जिक्र इतने फक्र और

1. माल पूंजी
2. घर का सामान
2. दरख्त, वृक्ष
4. प्रखर बुद्धि

कसरत से करते कि यह ग्रहवाल हुग्रा कि पल्लखन की जड़े शजरे में उतर ग्रायीं जैसे घुटनों में पानी उतर ग्राता है।

वो जमाने ग्रौर थे जब बुजुर्ग ग्रसली ग्रम्पोटेन्ट यानि मावराउन-नहरी[1] नम हो कोई शख्स खुद को इज्जतदार नही समझता था किबला के बुजुर्गों ने जब वतन छोडा तो ग्रांखें नम दिल उदास थे। बार बार ग्रपना दस्ते ग्रफसोस[2] जानुए ग्रस्प पर मारते ग्रौर एक दूसरे की डाढी पर हाथ फेर के ग्रस्तगा फरुल्लाह, ग्रस्तफगरुल्लाह कहते थे कि ताजा विलायत जिससे मिले ग्रपने हुस्ने[3] ग्रखलाक से उसका दिल जीत लिया।

'पहले जा फिर जाने कहा फिर जाने जाना हो गया।' फिर यही लोग रफ्ता रफ्ता पहले खां फिर खाने खां फिर खाने खाना हो गये।

हवेली के ग्रारकीटेक्चर की तरह उनके ग्रमराज भी शाहाना होते थे। बचपन में दांये गाल पर गालिबन ग्रामों की फसल मे फुन्सी निकली थी जिसका दाग मुजूज बाकी था चेहरे पर ग्रच्छा लगता था। कहते थे ग्रौरंगजेबी फोडा निकला था। साठ के पेट मे ग्राये तो शाहजहानी हब्सबाल मे मुब्तिला हो गये। फरमाते थे कि गालिब मुगल बच्चा था सितम पेशा, डोमानी को ग्रपने जहर-ए-इश्क से मारा मगर खुद इसी मेरे वाले ग्रारजे मे मरा। ग्रपने वालिद मरहूम के बारे मे फरमाते थे—ग्रकबर सगरहनी मे इन्तकाल फरमाया, मुराद, उसके ग्रांखो की टीबी थी, मरज तो मरज किबला की नाक तक ग्रपनी ना थी यूनानी बताते थे।

---

1. एक कबीला 2. पश्चाताप का हॉल
3. व्यवहार कुशलता

कुछ चुनी हुई ग़ज़लें और उनके अशआर

"एहसान दानिश"

क्या मर गए अहले जुनूँ कुछ तो खबर लो,
उठती नही कही से भी दार[1] श्रो रसन[2] की बात ।

दिल उमड आया है 'एहसान' भर आए आँसू,
जब सुना है किसी फनकार ने फ़न बेच दिया ।

तुम सादा मिजाजी से मिटे फिरते हो जिस पर,
वह शख़्स तो दुनियाँ में किसी का भी नही है ।

दिल सोज़े ग्रलम[3] से जीता है, लबरेज[4] लुहू से सीना है,
इस मुल्क मे रहने वालों का यह मरना है यह जीना है ।

1. फाँसी
2. रस्सी (फन्दा)
3. जुदाई की आग
4. लबालब भरा हुआ

"तहसीन सर्वरी"

जैसे बरसात में सूखे हुए पेडों का समाँ,[1]
हम तेरी बज़्म[2] में है तिश्न-ए-फरियाद[3] ऐसे ।

मुहाल है तेरे इस शहर से निकलना भी,
तमाम रास्ते है अब तेरी गली जैसे ।

हमारे घर मे यूँ तो क्या नही है,
बस इतना है कोई रहता नहीं है ।

ख़ूगरे गम[4] है, मगर गम के मग्रानी[5] मांगे,
दिल वो प्यासा है जो दरिया मे भी पानी मांगे ।

1. दृश्य
2. महफिल
3. फरियाद के प्यासे
4. गम का अभ्यस्त (आदी)
5. अर्थ

"इक़बाल अज़ीम"

जुल्म से हम डर गए यह तुम से किस ने कह दिया,
ज़ुल्म कानून रवा[1] हो जाए तो हम क्या करें।

तुमने ख़ुद नूर[2] का ज़ुल्मत[3] से किया है सौदा,[4]
कर के तौहीने सहर,[5] शाम को इल्ज़ाम न दो।

हो तो रही हैं कोशिशें आराइशे[6] चमन,
लेकिन चमन ग़रीब में अब कुछ रहा भी है।

मुझे मलाल[7] नहीं अपनी बेनिगाही का,
जो दीदावर[8] हैं उन्हें भी नज़र नहीं आया।

---

1. जायज़
2. रोशनी
3. अन्धकार
4. व्यापार
5. सहर (प्रातः) का अपमान
6. सजावट
7. दुःख
8. आँख वाले

"हबीब जालिब"

कहते थे जो अब कोई नहीं जाँ से गुज़रता,
लो जाँ से गुजर कर उन्हें झुठला तो गए हम।

दुश्मनों ने जो दुश्मनी की है,
दोस्तों ने भी क्या कमी की है।

पल दो पल के ऐश[1] की खातिर क्या दबना, क्या झुकना,
आखिर सब को मर जाना है, सच ही लिखते जाना।

वह एक चीख थी, इक शोर था, सितम[2] के खिलाफ,
वह सूएदार[3] गया और बार बार गया।

तुम्हारा साथ कहो कब नहीं दिया लोगों ?
गले में हार न डालो तो गालियाँ भी न दो।

सजा के तौर पे हम को मिला क़फ़स[4] जालिब,
बहुत था शौक़ हमें, आशियाँ बनाने का।

1, ऐश्वर्य
2. अत्याचार
3. फाँसी की तरफ़
4. पिंजरा

"सईद रज़ा सईद"

कमरा बन्द किए बैठे तनहाई का रोना रोते हो,
खिडकी खोल के बाहर देखो कितने सारे अपने लोग।

तूफ़ानों के हाँपते जिस्मों से तुम पूछ के देखो तो,
हम इक ऐसी डाली है जो झुकना, टूटना क्या जाने।

अब जो पाँसा पलटा था तो कुछ ज़्यादा ही पलटा था,
अब जो पाँसा पलटेगा तो कुछ ज़्यादा ही पलटेगा।

अपनी अपनी सोच से तामीर[1] होते हैं मकाँ,
हम तो छत को घर कहेंगे और दीवारों को भाँप।

धूप में जलते जिस्मों वालो को तुम ने क्या समझा है;
यही तो तीर बोते है, शबनम की फ़स्ल उगाते है, ।

थक गए हो तब भी मत बैठो कि घर नज़दीक है,
रात काली हो तो समझो सहर नज़दीक है।



1. निर्माण

"रहमी[illegible] अली शायर"

ज़ख़्मों को फूल, अश्क को शबनम कहो कि अब,
साहब यह चाहते हैं कि ग़म का बयाँ न हो।

इस जहाँ में तो अपना साया भी,
रोशनी हो तो साथ चलता है।

मिलने को एक इज़्न-ए-तबस्सुम[1] तो मिल गया,
कुछ दिल ही जानता है जो दिल पर सितम हुए।

हर संग-ज़नी[2] मेरे लिए बारिशे गुल[3] है;
थक जाओ तो कुछ संग[4] बदस्ते दिगराँ[5] और।

जाने यह कौनसी हसरत थी कि जिसकी ख़ातिर,
ज़हर को ज़हर समझ कर भी पिए जाता हूँ।



---

1. मुस्कराहट
2. पत्थरबाजी
3. फूलों की बारिश
4. पत्थर
5. दूसरों के हाथों में।

"शबनम रूमानी"

इक चीज़ बसीरत[1] है, इक चीज़ बसारत[2] है;
कांधों पे ग़रीबों के सरदारे अमारत[3] हैं।

एक ऐश तलब, इत्र में डूबे हुए शह[4] से,
बेहतर है पसीने में नहाया हुआ मज़दूर।

हूर वो क़ुसूर वो कौसर[5] पर है क़ाबिज़ चन्द इन्सान,
बाक़ी दुनिया ख़्वाबों की जन्नत में रहती है।

अपनी मजबूरी को हम दीवार वो दर कहने लगे,
क़ैद का सामां किया और उसको घर कहने लगे।

हुस्न का चाके गरेबां देखना,
यह हमारे अहद[6] की पहचान है।

---

1. रौशनी
2. समझदारी
3. दौलतका सरदार
4. बादशाह
5. जन्नत का हौज़
6. काल

"शकेब जलाली"

सोचो तो सिलवटों से भरी है तमाम रूह,
देखो तो इक शिकन भी नही है लिबास मे।

आकर, गिरा था कोई परिन्दा लुहू मे तर,
तस्वीर अपनी छोड़ गया है चटान पर।

मोती क्या क्या न पड़े है तहे दरिया लेकिन,
बर्फ़ लहरों की कोई तोड़ने वाला ही नही।

हर मोड़ पर मिलेंगे कई राहज़न 'शकेब,'
चलिए छुपा के गम भी ज़रो माल की तरह।

बुरा न मानिए लोगो की ऐब जूई[1] का,
उन्हे तो दिन का भी साया दिखाई देता है।

मअ़त की डोर खुदा जाने कहाँ से टूटे,
किस घड़ी सिर पे लटकती हुई तलवार गिरे।

यह और बात है कि वो लब थे फूल से नाज़ुक,
कोई न सह सके लहजा करख़्त[2] ऐसा था।

यह आदमी हैं कि साए हैं आदमीयत के,
गुज़र हुआ है मेरा किस उजाड़ बस्ती में।

क्यों रो रहे हो, राह के अन्धे चिराग़ को,
क्या बुझ गया हवा से लुहू का शरार भी।

---

1. अवगुण गिनाना   2. सख़्त, भद्दा
3. चिनगारी

"शोरिश काशमीरी"

ऐ रब्बे ज़ुलजलाल[1] तेरी बरतरी की खै़र,
किन ज़ालिमों की मदह् वो सिना[2] कर रहा हूँ मैं।

बहुत क़रीब से देखा है रहनुमाओं को,
कहूँ तो गर्दिशे[3] लैल[4] वो नहार[5] रुक जाए।

हम उस मुक़ाम पर है मज़ीजाने मोहतरम,[6]
जिस का जहां में कर्ब वो बला[7] नाम हो गया।

जब मेरे आशियां का सवाल आ गया,
गिर के बिजुली को अक्सर संभलना पड़ा।

ख़ून आलूद[8] शाहराहों[9] से;
कहकशाने वफ़ा[10] भी उठेंगे।

---

1. बड़प्पन वाला ईश्वर
2. प्रशंसा, तारीफ
3. चक्र
4. रात
5. दिन
6. आदरणीय, प्रिय वन्दनीया
7. कर्बला, हज़रत इमाम हुसैन की शहादत का स्थान
8. ख़ून से भरा हुआ
9. रास्ते
10. वफ़ा की कहकशानें

"ज़हीर काशमीरी"

हम को तूफ़ाँ से जब मिली फ़ुरसत,
याद आया सुलूक साहिल का ।

सुन लिया नाल-ए-जरस[1] हम ने,
उठ गया ऐतबार मन्ज़िल का ।

यह रात पे बेकरां[2] अन्धेरे,
एक दिल का चिराग़ जल रहा है ।

हम कल भी सरेदार सदाक़त[3] के अमी[4] थे ?
हम आज भी इन्कारे हक़ीक़त न करेंगे ।

हमारे नाम से खाइफ़[5] रहो ख़ुदावन्दो[6];
हमारा नाम है एलाने अज़्मत आदम[7] ।

इसी में हिकमते आसा इसे जहाँ[8] है, "ज़हीर";
कि ख़ाक[9] फाँक सको और ख़ू उगल के चलो ।

---

1. घण्टे की आवाज़
2. बहुत दूर तक, जिस का ओर छोर नहीं हो
3. सच्चाई
4. अमानतदार
5. भयभीत
6. शासको
7. मानवता का गौरव
8. दुनिया की सृजनशीलता का दर्शन
9. मिट्टी धूल ।

"उबैदुल्लाह-अलीम"

पिघल रहे हैं जहां लोग शोलए जां से,
शरीक मैं भी उसी महफ़िले हुनर में हूँ।

आप भी कैसे शहर मेंआ कर शायर कहलाए हैं—"अलीम",
दर्द जहां कमयाब बहुत है, नग़मों की अरज़ानी[1] है।

यह दौरे बेहुनरां[2] है, बचा रखो ख़ुद को,
यहां सदाक़तें[3] कैसी करामतें[4] कैसी ?

---

1. सस्ताई
2. अयोग्यों
3. सच्चाइयां
4. चमत्कार, निपुणता

"अहमद फ़राज़"

जबकि सब के वास्ते लाए हैं कपड़े सेल से,
लाए हैं मेरे लिए क़ैदी का कम्बल जेल से।

अमीरे शहर फ़क़ीरों को लूट लेता है,
कभी बहीले ए-मज़हब,[1] कभी बनामे वफ़ा।

सभी को जान थी प्यारी, सभी थे लब बस्ता[3],
बस इक 'फ़राज़' था, ज़ालिम से चुप रहा न गया।

मैं तो हर तरह के असबाबे हलाकत[4] देखूँ,
ऐ वतन! काश तुझे अब के सलामत देखूँ।

रफ़्ता रफ़्ता वही ज़िन्दां में बदल जाते हैं,
अब किसी शहर की बुनियाद न डाली जाए।

---

1. धर्म के नाम पर
2. वफ़ादारी के नाम पर (राष्ट्रीयता के नाम पर)
3. होंट बंधे हुए
4. तबाही के असबाब

"मुस्तफ़ा ज़ैदी"

बड़े ख़ुलूस[1] से अहवाल[2] पूछने के लिए,
गुज़र गयी शबे फ़ुर्क़त[3] तो मेरे यार आए।

कुछ मैं ही जानता हूँ जो मुझ पर गुज़र गयी,
दुनिया तो लुत्फ़ लेगी मेरे वाक़आत में।

सब ने उसके हुक्म पर सजदे किए,
हम अकेले रह गए इनकार में।

दुनियाँ की बेउसूल अदावत तो देखिए,
हम बुल हवस[4] बने तो वफ़ा आम हो गयी।

बिजुलियाँ जिस की कनीजों[5] मे रहा करती थीं,
देखने वालों ने देखा कि वह ख़िरमन[6] भी जला।

---

1. प्यार से
2. हालात
3. जुदाई की रात
4. चाहने वाले, तलबगार
5. ख़िदमतगारी, दासता
6. खलिहान

"मन्ज़र सिद्दीकी"

जीने की आरज़ू[1] है अगर बांकपन के साथ,
दीवाना वार खेलिए दार वो रसन के साथ।

जुस्तजू[2] यह थी कि आखिर किसको कहिए राहज़न,[3]
बात बढ़ते बढ़ते मीरे कार्वां[4] तक आ गयी।

मैं और इल्तजाए करम[5] आप से करूँ,
यह भीक दीजिए उसे, जिसका खुदा न हो।

कितने क़रनों[6] से है दुनियां की ज़बां पर यह सवाल,
आदमी वाक़िफ़े आदावे जहां है कि नहीं।

पूछता हूँ यह नए दौर के इन्सानों से,
कहीं तहज़ीब[7] वो तमद्दुन[8] का निशां है कि नहीं।



1. तमन्ना (अभिलाषा)
2. तलाश
3. लुटेरा
4. काफिले का सरदार
5. दया दृष्टि
6. ज़माने, अरसे
7. सभ्यता
8. संस्कृति

"अहमद नदीम क़ासमी"

ऐ खु़दा, अब तेरे फिरदौस[1] पे मेरा हक है,
तू ने इस दौर के दोज़ख़[2] में जलाया है मुझे।

वह एक बार मरे, जिनको था ह्यात[3] से प्यार,
जो जिन्दगी से गुरेज़ां[4] थे, रोज मरते थे।

मेरी पहचान तो मुशकिल थी मगर यारों ने,
ज़ख़्म अपने जो कुरेदे हैं तो पाया है मुझे।

मरूँ तो मैं किसी चेहरे में रंग भर जाऊँ,
नदीम[5] काश यही एक काम कर जाऊँ।

---

1. जन्नत (बैकुण्ठ)
2. जहन्नुम (नर्क)
3. जिन्दगी
4. उदासीन
5. दोस्त

"फ़ैज़ अहमद फ़ैज़"

न गँवाओ नावके-नीमकश[1], दिले रेज़ा रेज़ा गँवा दिया,
जो बचे है संग समेट लो, तने दाग़-दाग़ लुटा दिया।

मिरे चारागर को नवेद[2] हो, सफ़े-दुश्मनाँ को ख़बर करो,
जो वो क़र्ज़ रखते थे जान पर वो हिसाब आज चुका दिया।

करो कज जबीं पे सरे कफ़न, मिरे क़ातिलों को गुमाँ न हो,
कि ग़ुरूरे-इश्क़ का बांकपन पसेमर्ग[3] हम ने भुला दिया।

उधर एक हर्फ़ कि कुश्तनी,[4] यहाँ लाख उज़्र[5] था गुफ़्तनी,[6]
जो कहा तो सुन के उड़ा दिया, जो लिखा तो पढ़ के मिटा दिया।

जो रुके तो कोहे गराँ[7] थे हम, जो चले तो जाँ से गुज़र गये,
रहे-यार हम ने क़दम क़दम तुझे यादगार बना दिया।

---

1. आधा खिंचा हुआ तीर
2. ख़ुशख़बरी
3. मरने के बाद
4. मार देने वाला
5. विवशता
6. कहने योग्य
7. बहुत बड़ा पहाड़।



''कुछ चुनी हुई नज़्में और उनके अशआर''



"हबीब जालिब"

खत्म होगा सितम का अंधेरा,
आने वाला ज़माना है तेरा,
दर्द की रात है कोई दम की
टूट जाएगी ज़न्जीर गम की,
मुस्कराएगी हर आस तेरी,
ले के आएगा खुशियाँ सवेरा,
सच की राहों मे जो मर गए है,
काफिले मुख्तसर कर गए है,
दुख न झेलेंगे हम मुहं छिपा के,
सुख न लूटेगा कोई लुटेरा,
आने वाला ज़माना है तेरा।

"फ़हमीदा रियाज़"

"शहर वालो सुनो"

इस बुरीदा[1] ज़बां शहर में किस्सा गो ख़ुश क्यां आए है,
शहर वालो सुनो, इस सराए में हम क़िस्सा रुवा आए है ।

शहर मासूम के साकिनो[2] ! कुछ फ़साने हमारे सुनो,
दूर देशो मे होता है क्या माजरे आज सारे सुनों,
वह सियाह चश्म, पस्ता दहन[3], सीम तन[4] नाज़नीन[5] औरतें,
वह कशीदा-बदन[6], सब्ज़ ख़त, ख़ुशक़ता[7] माहरू[8] नौजवां,
और वह जादूगरी उन की तक़दीर की,
वह तिलस्मात[9], सरकार की नौकरी,
एक अनोखा महल,
जिस से गुज़रा तो हर शाहज़ादे का सरखू़क[10] का बन गया,



जोफ़[11] से उनकी मिषगा[12] तलक झड़ गयी,
जिस्म क्या रूह पर झुरियां पड़ गयी
और वह शहज़ादियां,
कच्ची उम्रो मे जो सैर करने गयीं,
बाग़ का वह समां,
इश्क के फूल खिलते हुए दूर तक रेशमी घास मे,
वह फ़ुमूं साज़ ख़ुशबू भटकती हुई उनके अनफ़ास[13] मे,
अफ़सरो और शाहों की आग़ोश मे,
उन के निचले बदन कैसे पथरा गए ।

---

1. कटी 2. बाशिन्दों 3. छोटे-छोटे
4. चांदी का बदन 5. नाज़ुक, नाज़वाली 6. तांबा
7. सुन्दर गजीले 8. चांद जैसे 9. जादू
10. सूअर 11. कमज़ोरी 12. पलक 13. सांसो

"वह अजब मुमलिकत"

जानवर जिस पर मुद्दत से थे हुकमरां,
गो रिआया[1] को उस का पता तक न था,
और था भी तो, बेबस थे, लाचार थे,
उन में जो अहले दानिश[2] थे मुद्दत हुई मर चुके थे,
जो जिन्दा थे बीमार थे,
कुछ अजब अहले फ़न भी तो थे उस जगह,
सामरी सहर से रोग में मुब्तिला,
तिलअते शाह थी उनकी वाहिद दवा,
बेश तर कावे सुल्तान के ख़ोशाची,
गीत लिखते रहे, गीत गाते रहे,
अहदे ज़र्री[3] के डन्के बजाते रहे।



किन वज़ीरों से उनकी रिक़ाबत रही,
और काम आई किस किस की जादूगरी,
शाह का जब खटोला उड़ा तो फिर क्या हुई वह परी,
जमा करते थे हम एक रंगी फसाना अजब दास्तां;
आस्तीनों में दफ़्तर निहांलाए हैं,
शहर वालो सुनो।



1. पूजा 2. बुद्धिजीवी 3. स्वर्णकाल

"सईद रज़ा सईद"

उड़ा है चेहरे का रंग उन के जो खूँ का व्यापार कर रहे हैं;
कि सरफिरे आग के समन्दर को तैर कर पार कर रहे है,
सफो मे कांटो के खलबली है कि फूल यलगार[1] कर रहे हैं,
सभल जरा ऐ निजामे कोहना[2], हम आखिरी वार कर रहे है
ये रीति है इस जहा की जितने उठे है फिरऔन मिट गए है,
बडो मे आई है जब रऊनत[3] तो अपने छोटो से पिट गए है.।



माना खाक के जर्रे है हम, पर ऐटम की ताकत है
अलग अलग तो कुछ भी नही है मिल जाएं तो क़यामत हैं।
शर्क़[4] से गर्ब तक था जो छाया हुआ वह नहूसत का साया सिमटने लगा,
ऐ वतन के गुलामाने डालर सुनो, आज डालर का भाव भी घटने लगा।



तुम्हारे बदले फकत तुम्हारी अलम[5] भरी दास्ता बचेगी,
मिरे रफीको[6] जहा पे मै हू, वही वे आ जाओ तो जा बचेगी।



मसाइब[7] लाख बढ जाऐं अजाइम[8] कम नही होते,
यह सर वह है जो कट जाते है लेकिन खम[9] नहीं होते।



जु़ल्मत[10] के खुदाओ से कह दो यह रात हमे मन्जूर नही,
जिस सुबह के हम पैगम्बर हैं वह सुबह ज़यादा दूर नही।

---

1. हमला 2. पुराना विधान 3. अभिमान 4 पूरब से पच्छिम
5. गम 6. साथियों 7. कष्ट, यातनाऐं 8. इरादे, हौसले
9. झुकना 10. अन्धेरे

"मन्ज़ूर हुसैन शौर"

मेरी नज़रों में न थी आदमीयत की तक़सीम,[1]
मैं समझता था कि इन्सान है इस से भी अज़ीम[2],
इस से आगे न ग़मे फ़िक्र रिसा दे मुझ को,
मेरे माबूद[3] ! कोई और सज़ा दे मुझ को ।



क़त्ले आदम है अगर क़ौम वो वतन की ताबीर,
इतना तारीक है गर नैय्यरे आज़म का ज़मीर,
दूर मन्ज़ूम-ए-शमसी से हटा दे मुझ को,
मेरे माबूद ! कोई और सज़ा दे मुझ को ।



अपने चेहरे पे लुहू अपने वतन का मलना,
किससे मुमकिन है भरे शहर में तन्हा चलना,
फ़र्ज़ ताज़ीर बअन्दाज़े ख़ता दे मुझको,
मेरे माबूद ! कोई और सज़ा दे मुझ को ।



1. बँटवारा 2. बड़ा 3. ईश्वर

"फ़ैज़ अहमद फ़ैज़"

आज इक हर्फ़[1] को फिर ढूंढता फिरता है ख़याल,
मध-भरा हर्फ़ कोई, ज़हर भरा हर्फ़ कोई,
दिल नशीं हर्फ़ कोई, क़हर भरा हर्फ़ कोई,
हर्फ़ उलफ़त कोई दिलदारे नज़र हो जैसे,
जिस से जलती है नज़र बोस-ए-लब[2] की सूरत,
इतना रौशन की सरे मौज-ए-ज़र[3] हो जैसे,
सोहबते यार में आग़ाजे तरब[4] की सूरत,
हर्फ़ नफ़रत कोई शमशीरे ग़ज़ब हो जैसे,
ता-अबद[5] शहरे सितम जिससे तबह हो जाए,
इतना तारीक[6] कि शमशान की शब[7] हो जैसे,
लब पे लाऊं तो मेरे हौंट सियह हो जायें।



आज हर सुर से हर इक राग से नाता टूटा,
ढूंढती फिरती है मुतरिब को फिर उसकी आवाज़,
जोशिशे दर्द से मजनूं के गरेबां की तरह
चाक दर चाक[9] हुआ आज हर इक पर्द-ए-साज[10],
आज हर मौजे हवा से है सवाली खिलक़त,[11]
ला कोई नग़मा[12], कोई सौत[13], तेरी उम्र दराज,
नौहए-ग़म ही सही, शोरे शहादत ही सही,
सूरे महशर ही सही, बांगे कयामत ही सही।



1. शब्द (बात) 2. चुम्बन (होंट का बोसा)
3. सुनहरी लहरों का किनारा 4. ऐश की शुरुआत
5. अनन्त काल के लिए 6. अंधेरा 7. रात
8. गाने वाला 9. हर तरफ़ से फाड़ डाला गया।
10. साज (राग) का पर्दा 11. दुनियां
12. संगीन की सभ 13. ध्वनि (आवाज)
14. ग़म (शोक) का गीत 15. कयामत (प्रलय) के दिन फूंकीजाने वाली आवाज
16. कयामत का शोर

● प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डा० फज़ले इमाम एम०ए०, पी०एच०डी०, डी०लिट्०, साहित्यरत्न, उर्दू तथा हिन्दी के उन प्रतिष्ठित एवं सशक्त हस्ताक्षरों में से हैं जिनकी लेखनी का पैनापन सदैव यथार्थ का द्योतक रहा है। वह विषय की समीक्षा बड़े कलात्मक ढंग से करते हैं। निष्पक्ष और दो टूक अन्दाज डा० इमाम की प्रमुख विशेषता है। देश विदेश का भ्रमण तथा अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में अपने स्वच्छन्द विचार प्रमाणित कर चुके हैं। सम्प्रति राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के उर्दू तथा फारसी विभाग में कार्यरत हैं। हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं और साहित्यों पर समान रूप से अधिकार रखते हैं।

आवरण मुद्रक—प्रगति प्रिंटर्स, 636, सिन्धी कालोनी, आदर्श नगर, जयपुर